प्रकाशक—

छोगमल चोपड़ा

मंत्री

श्री जैनश्वेतांबर तेरापंथी सभा

१५६, क्रास स्ट्रीट,

कलकत्ता।

मुद्रक—

भगवतीप्रसाद सिंह

न्यू राजस्थान प्रेस,

७३ ए, चासाधोबापाड़ा स्ट्रीट,

कलकत्ता।

॥ श्री ॥

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

मु० चूरू निवासी स्वर्गीय रायचन्दजी सुराना ने कलकत्ते की 'जैन श्वेताम्बर तेरापंथी विद्यालय' के छात्रों की धार्मिक शिक्षा के लिये 'ज्ञान प्रकाश' नामक एक पुस्तक बनाई थी। उक्त विद्यालय के बालकों के लिये वह धार्मिक पाठ्यपुस्तक निर्धारित थी। उसके २।३ संस्करण अब तक छप चुके। ज्ञान प्रकाश के पठन-पाठन के बाद पचीश बोल, चर्चा, तेरा द्वार आदि उक्त विद्यालय में पढ़ाये जाते हैं। धार्मिक शिक्षा के लिये भिन्न २ पुस्तक न रख कर एक ही पुस्तक में छात्रों के पठन योग्य सामग्री एकत्रित कर देना उचित समझ मैंने आवश्यक संशोधन कर खास कर उक्त विद्यालय के बालकों के सारी कक्षाओं के उपयोगी यह नवीन संस्करण छपाने के लिये परामर्श दिया और अनेकों सज्जनों के यह बात जँच गई, इस लिये यह पुस्तक बनाई गई है। पचीश बोल के हर एक बोल के नीचे कुछ नोट मैंने अपनी धारणा के अनुसार लगा दिये हैं ताकि अजैन अध्यापक भी सहज में उन्हें समझ कर पढ़ा सकें। पुस्तक के प्रारम्भ में जैन श्वेताम्बर तेरापंथी मत के विषय में दो चार बातें साधारणतया पाठक, शिक्षक व छात्रों की जानकारी के लिये लिखी हैं। आशा है, उसे पढ़ कर लोग तेरापंथी मत संबंधी कुछ भ्रान्त धारणायें दूर कर सकेंगे।

यद्यपि यह पुस्तक जैन श्वेताम्बर तेरापंथी विद्यालय के बालकों के लिये बनाई गई है तथापि इससे दूसरे छात्र व पाठक भी लाभ उठा सकेंगे, यह आशा करता हूं।

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा
१५३ सूतापट्टी
माघ शुक्ल ११।१६६५

छोगमल चोपड़ा
अ० मन्त्री

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी मत संबंधी दो चार बातें:—

संसार में 'धर्म' एक ऐसी वस्तु है जिसके तत्त्व का अर्थ विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न प्रकार से किया है। परन्तु आधुनिक जितने प्रकार के प्रधान-प्रधान धर्म व मत प्रचलित हैं उनमें सब किसी ने अहिंसा को अच्छा ही बतलाया है। जैन धर्म "अहिंसा" तत्व को जितना महत्त्व देता है शायद दूसरा कोई भी धर्म उतना महत्त्व 'अहिंसा' को नहीं देता। इसलिए जैन धर्म में अहिंसा की विशिष्टता प्रतिपादन के लिए और अहिंसा पालन के लिए विशेष गवेषणा पूर्ण विचार व पुंखानुपुंख रूप से उस पर आलोचना की गई है। जैन संप्रदाय के दो मुख्य विभाग श्वेताम्बर व दिगम्बर हैं और श्वेताम्बर में मूर्तिपूजक, स्थानकवासी व तेरापंथी ये तीन शाखायें हैं। ये तीनों शाखायें आगम याने सूत्र को प्रामाण्य मानती हैं, परन्तु कोई ८४ आगम, कोई ४५ आगम, कोई ३२ आगम और उसकी मिलती बातें मानते हैं। जैनेतर जनता आगम प्रमाण की झंझट में न पड़ कर न्याय व युक्तिसंगत बातें मानने को हमेशा तैयार है। अस्तु, इसीलिए जैन

श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय के मुख्य-मुख्य तत्त्व जिन पर दूसरे लोग गहन विचार न करके नाना प्रकार कटाक्ष करते हैं उस पर कुछ प्रकाश डालना उचित समझ यथाशक्ति सरल भाषा में विवेचन करता हूँ।

संसारी जीव अनादि काल से कर्मवश जन्म मरण को प्राप्त होता हुआ परिभ्रमण कर रहा है, कर्मों का सर्वथा नाश होने से जीव मुक्त होता है। कर्म जीव को बांध रखता है। वन्धन से छुटकारा होने से मोक्ष है। कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा। शुभ कर्म करने से शुभ फल और अशुभ कर्म से अशुभ फल भोगना पड़ेगा। जगत् में साधारणतः देखा जाता है कि कोई भी कार्य्य किया जायगा तो उसका फल अवश्य होगा। किसी कार्य्य का फल उसी वक्त मालूम पड़ता है, किसी कार्य्य का फल देरी से। प्रकृति के इस नियम का विपर्य्यय कभी नहीं होता।

समस्त कर्मों से छुटकारा पाना ही जीव का स्व-स्वभाव में, निज गुण में वर्तना है। जीव स्वभावसे विशुद्ध, उज्ज्वल, ज्ञानमय, चैतन्यमय है। जैनेतर मतों में जो आत्मा को परमात्मा का अंश वतलाया जाता है, वह वास्तव में अंश तो नहीं है परन्तु इस अर्थ से सत्य है कि परमात्मा, परमेश्वर, अथवा मोक्षप्राप्त जीव अपने समस्त वाह्य कर्मावरण से मुक्त है। हर एक जीव जब समस्त वाह्य आवरण से दूर होकर स्वरूप में विराजता है, तब वह परमात्मा सदृश ही परमात्मा हो जाता है। किसी तरह का वन्धन या आवरण न रहने से वह जीव फिर संसार में न आवेगा, वह निर्विकार अवस्था

में आत्मिक सुख में तल्लीन रहेगा। वह सुख निरवछिन्न, निरा-वाध है। समस्त जीव सुख के लिए लालायित हैं, परन्तु वैषयिक सुख में शान्ति नहीं। आशा, आकांक्षा, इच्छा का जहां तक छुटकारा नहीं, वहां तक आशा, वांछा, इच्छा और आकांक्षाओं की पूर्ति में जीव को सच्चा सुख नहीं मिलता।

संसारी जीव छोटे से बड़े तक सब कोई काल्पनिक सुखों के पीछे घूम रहा है, और वैषयिक या इन्द्रिय परितृप्ति के सुख को ही ध्येय मान रखा है। जीव तृष्णा, लोभ, मोह, रागादिक के वश सामान्य क्षणिक सुख को सुख मान लेता है परन्तु वास्तव में वह दुःख का ही कारण है और सच्चा सुख उसमें मिलता नहीं। जब तक राग व द्वेष भाव का प्रावल्य, स्वजन पर मोह, पर जन पर द्वेष है तब तक संसार से छुटकारा नहीं होता। राग व द्वेष समस्त कर्मों का बीज है। परन्तु द्वेष भाव पहिचानना जितना सहज है, राग भाव पहिचानना उतना सहज नहीं। 'ममत्व,' 'मोह,' 'राग,' 'स्नेह' इत्यादि प्रायः समानार्थक हैं। शरीर से भी 'ममत्व' रखना जब मुक्ति में बाधक है; शरीर से प्यारा जब संसार में दूसरा कोई नहीं, तब अन्य किसी से ममत्व भाव, राग भाव कैसे मुक्ति के लिए बाधक नहीं होगा? जैनधर्म में इसलिये परम पुरुष वही है, जो 'वीतराग' हैं। तेरापंथी मत के विरुद्ध कुछ लोगों का यह आक्षेप है कि यह दया रहित मत है। सूक्ष्म दृष्टि से जो लोग किसी धर्म व मत की समीक्षा करते हैं वे जो कुछ कहें परन्तु गहन और सत्य विचार से देखने से यह आक्षेप सर्वथा अनुचित प्रतीत हो जायगा।

सांसारिक समस्त कार्य्य ऐहिक हिताहित की दृष्टि से विचारे जाते हैं। समाज में रहने से नाना प्रकार का वन्धन हरएक मनुष्य को सहन करना पड़ता है। व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य व स्वच्छन्दता को समष्टि के हित के लिए संकुचित करना पड़ता है। सांसारिक व सामाजिक हित के लिये नाना प्रकार के वैषयिक कार्य्य भी करने पड़ते हैं। संसार राष्ट्र, देश या समाज की श्रीवृद्धि, उन्नति व अर्थलाभ आदि कार्य्य के लिए नाना प्रकार की हिंसा का कार्य्य भी करना पड़ता है। युद्ध, विग्रह, व्यापार. वाणिज्य आदि कार्य्य में नैतिक व पारमार्थिक उन्नति का कोई लेश मात्र नहीं। आत्मीय स्वजन पर ममत्व भाव से स्वजन पोषण, देश के व राष्ट्र के प्रति ममत्व भाव से अन्य राष्ट्र व अन्य देशवालों से नाना प्रकार साम दाम दंड भेदादि उपाय से कार्य्योद्धार करना पड़ता है। परन्तु उन सव कार्य्यों से जीव का कल्याण नहीं होता। वे सव कार्य्य तो गृहस्थ व संसारी लौकिक उन्नति के लिए समाज के अन्तर्भुक्त रहने के सवव करता है। आत्मिक कल्याण तो मन वचन काया करके किसी भी प्राणी को निज में दुःख न पहुंचाना, दूसरों से न पहुंचवाना और दुःख देते हुए को अनुमोदन न करने से ही होता है और यही समस्त जीवों की दया पालने का उपाय है। किसी भी जीव को कष्ट देना, हिंसा है और हिंसा से आत्मा कलुषित होती है। प्रायः सभी आर्यधर्म हिंसा को दूषनीय वतलाते हैं, परन्तु यह सिद्धान्त सम्यक् प्रतिपालन करनेवाले विरले ही निकलते हैं। इतना ही नहीं, परन्तु अहिंसा तत्व को जो कि दया

का ही पर्य्यायान्तर है, सम्यक् प्रकार से सद्गुरु की कृपा विना यथार्थ जानना कठिन है।

जीव हिंसा दूषनीय है, यह माननेवाले भी बहुत से लोग जीव अजीव की पहिचान नहीं जानते। एकेन्द्रिय से लगा कर पंचेन्द्रिय तक प्रत्येक जीव को दुःख देना हिंसा है। परन्तु कुछ लोग एकेन्द्रिय जीव को मारकर पंचेन्द्रिय के पोषण में दोष नहीं कहते। यह कहां तक न्यायसंगत है सो धीर चित्त से विचारना चाहिए। कुछ लोग वीतराग वर्णित दया का रहस्य न जानते हुए असंयति का जीवना वंछने में ही अर्थात् मोह राग में ही धर्म समझते हैं। इस जगह एक जटिल प्रश्न खड़ा होता है कि जीव बचाने में और जीव न मारने में क्या पार्थक्य है। बाह्य दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न नहीं, परन्तु, विचारने की बात है कि संसार में अनन्त जीव स्व-स्व कर्म वश हमेशा मर रहे हैं। जहां तक कोई जीव निजसे दूसरे को न मारे या न मरावे या मारनेवाले का अनुमोदन नहीं करे वहां तक अन्य जीवों के मरने से उसके शिर कोई दोष नहीं आता। कोई जीव दूसरे जीव को मार रहा है, वहां यदि हम उसे बचाने का प्रयास न करें तो हम पर क्या दोषारोपण आ सकता है? हमारे ऊपर क्या दायित्व है? हमारी आत्मिक उन्नति में यह निरपेक्ष भाव कैसे बाधक हो सकता है? जब तक हम स्वयं नहीं मारते और जब तक हम मारनेवाले को कह कर नहीं मरवाते और न मारनेवाले को भला ही समझते हैं तब तक हम कैसे दोषी हैं। अवश्य यदि हमारे सामने कोई जीव दूसरे को मारता हो और हम मन वचन

वा काया करके उसे किंचित् भी उस कार्य्य में प्रोत्साहित करें या सराहना करें तो हम दूसरे व तीसरे (कारित व अनुमोदित) करण से दोषी हो जायंगे परन्तु यदि हम मारनेवाले का हिंसा में दोष समझें और उसे उस हिंसा से निवृत्त होने के लिए उपदेश देकर सफल न हों या उपदेश देने का अवसर ही न हो तो मरनेवाले जीव का कर्मोदय ही समझ के तटस्थ भाव अवलम्बन कर लेवें तो हमारे कार्य्य में न्याय की दृष्टि से कौन सा दोष हुआ ? तर्क की खातिर यदि यह मान लिया जाय कि यह प्रत्येक जीव का कर्त्तव्य है कि बलवान आततायी से दुर्बल को बलप्रयोग द्वारा भी रक्षा करना उचित है, तो सोचने की बात है कि यह सिद्धान्त क्या एकेन्द्रिय से लगा कर पंचेन्द्रिय तक प्रत्येक जीव-घात के लिये और प्रत्येक समय लागू होगा ? या एक जीव दूसरे को भक्ष्य समझ कर मारता है उसी जगह यह मान्य होगा ? अथवा अनेक जीवसमष्टि दूसरे को कौतुहल वश मारता हो, वहां भी मान्य होगा ? पाठकगण जीव दया के नाम से कर्त्तव्य के माप की क्या हद् रक्खेंगे यह भी विचारिये ? उपरोक्त नाना प्रकार हिंसामय कार्य्य में से किसे रोकना चाहिए ? संसार में दूसरों के द्वारा जो हिंसात्मक कार्य्य होता है उसमें जो निज का स्वार्थ हानिकर हो या जिस हिंसा से स्नेहवश रक्षा का भाव पैदा हो, क्या वही रोकना उचित है और दूसरी हिंसा को आंख बन्द कर उपेक्षा कर जाना ही कर्त्तव्य है ? एक जीव से मरते हुए दूसरे प्राणी को बचा लेना (Theoretically) कहने मात्र में अच्छा मालूम . देता है परन्तु. कार्य्यतः (Practically)

यह सिद्धान्त सर्वत्र पालने योग्य है क्या ? और शेष सीमा तक (Extreme Limits) ले जाने से यह उपहास्य ही मालूम होगा। दूसरे से मरते हुए जीव की रक्षा करना, उस पर प्रेम, स्नेह, मोह, ममत्व, राग भाव से हुआ। तब तो जहां मोह ममत्व स्नेह है वहां जीव को वन्धन है और जहां मारनेवाले की आन्तरिक कलुषता उपदेश देकर दूरकर उसे हिंसा का बुरा परिणाम समझा कर, हिंसा से निवृत्त किया गया, वही सच्चा कर्त्तव्य है।

तेरापन्थी मत के सिद्धान्तों के रहस्य को न समझ कर बहुत से लोग दूसरों की निन्दा द्वारा जो रोचकता मिलती है उसका लोभ संवरण न कर भोले भाइयों को बहकाने के लिए गंभीर दार्शनिक तत्वों को विकृत कर अनर्थक कागद, काली, और समय का अपव्यवहार करते हैं। जिसकी जैसी वृत्ति होती है, वह सहज में छुटती नहीं, पर किसी मत के समझे बुझे विना और समझने का प्रयत्न किये विना कृतविद्य प्रतिष्ठित लेखकगण जो कलम चलाते हैं, यह बड़ा ही विसदृश मालूम होता है।

जब तब यही दृष्टान्त दिया जाता है कि कोई दुष्ट व्यक्ति किसी अनाथ वालक के पेट में छुरी भोंकता हो तो उसे बचा लेने में तेरापन्थी पाप समझते हैं। इस पर जरा विवेचन करना उचित है—

जैन जनता चार विभागों में विभक्त है। साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका। इन चारों के समूह को चतुर्विध संघ कहते हैं। चारों मुक्ति के इच्छुक हैं और उसी तरफ प्रयत्न करते हैं। साधु, साध्वी पञ्च महाव्रत धारी होते हैं याने मन-वचन काया द्वारा कृत, कारित,

अनुमोदित यह तीन करण से सर्वथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह यह पांच महाव्रत पालते, किसी प्रकार पाप याने सावद्य कार्य्य नहीं करते हैं। श्रावक, श्राविका, गृही होने के सबब सर्वथा त्रिकरण त्रियोग से महाव्रत नहीं पाल सकते हैं वे तो अनुव्रतों को अपने-अपने सामर्थ्यानुसार पालन करते हैं। सर्वथा सावद्य परिहार उनसे हो नहीं सकता। जो दृष्टान्त बच्चे के पेट में छुरी भोंकने का दिया जाता है उस पर इतना ही कहना यथेष्ट है कि कोई भी जिनाज्ञा प्रमाण चलनेवाला जैन साधु या साध्वी ऐसे मौके पर उक्त अनाथ बच्चे को दुष्ट घातक के छुरी से बचा नहीं लेते। वे तो ऐसे मौके पर यदि सम्भव हो तो उपदेश द्वारा घातक को दुष्कृत से निवृत्त करते, अन्यथा यह दृश्य असहनीय हो तो वह स्थान त्याग कर चले जाते हैं। उपदेश द्वारा हिंसक को समझा कर दुष्कृत्य से निवृत्त करना वीतराग प्ररूपित धर्म है किन्तु बल प्रयोग द्वारा किसी को कष्ट पहुंचा कर बचा लेना जिन कथित धर्म नहीं। यदि ऐसी अवस्था में न छुड़ाना निर्दयता का द्योतक है तब तो जैन साधु साध्वी निर्दय ही ठहरेंगे। यदि तेरापंथी मत पर इसलिये लांछन लगाया जाता है कि वे इस कार्य्य में पाप बताते—तब तो वे जैन साधु साध्वी जो इस बालक को नहीं बचाते वे भी पाप ही करते होंगे। साधु-साध्वी से पूछने से यही कहेंगे कि साधु-साध्वी तो संसार त्यागी हैं, उन्हें इन सब सांसारिक रक्षनावेक्षन से क्या मतलब? पर उन्होंने तो सावद्य का त्याग किया है, यदि यह कार्य्य सावद्य नहीं तो खुद क्यों न करते? तब उत्तर मिलता कि गृहस्थ का कोई भी कार्य्य करना

साधु के लिये मना है। अब सोचिये कि, जो कार्य्य साधु करते नहीं, वह कार्य्य गृहस्थ न करे तो क्या त्रुटि हुई? वास्तव में पूछिये तो गृहस्थ व संसारी मनुष्य स्नेह, ममता, मोह के वश ऐसे स्थल में बल प्रकाश द्वारा आततायी के हाथ से निरपराध जीव को बचाने की कोशिश करता है, तो इसमें घातक के आन्तरिक भावों का परिवर्त्तन नहीं होता। उनकी कलुषित चित्तवृत्ति को सुपथ में परिचालित कर यदि उन्हें आरब्ध हिंसा से निवृत्त किया जाता तो उनकी आत्मा का कल्याण होता। बालक बचे या मरे यह उनकी स्वकर्म-प्रेरणा से होगा। उनके बचने मरने के लाभालाभ के ख्याल से नहीं, प्रत्युत घातक की मनोवृत्ति को सुमार्ग में लाने के वास्ते जो प्रयास है, वही स्तुत्य है। जैन सिद्धान्तों में १८ प्रकार के पाप बतलाये हैं। वह प्राणातिपात, मृषावाद अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, पर परीवाद, रति अरति, मायामृषा, मिथ्यादर्शनशल्य हैं। इसमें राग (स्नेह ममत्त्व) भी एक पाप है। किसी जीव पर ममत्त्व भाव से बचाने का प्रयत्न आत्मा का राग (अनुराग, स्नेह मोह) भाव है। यह सर्वथा त्याज्य है। संसारी जीव के लिये सांसारिक प्रेम बंधन छुटना अस्वाभाविक है परन्तु निष्काम भाव से, निर्विरोध चित्त से, अपनी प्रिय वस्तु का अनिष्ट देख कर किसी प्रकार मानसिक चांचल्य न आने के भाव को जो सब लोक गहन विचार न कर, दार्शनिक तत्त्वों को न समझ कर, विकृत धारणा करते हैं वे बड़ी भारी गलती में हैं।

"एक जीव का त्रास देकर दूसरे जीव की रक्षा करना राग, द्वेष "ही है और राग द्वेष करना एकान्त पाप है। यह तो अष्टम, नवम, "दशम, गुणस्थानवर्त्ती जीवों पर लागू होता है और वहां अंतरंग "धर्म बहुत उच्चकोटि का है। हमको वाह्य धर्म पालन करने में "अपनी आत्मा की कलुषता वा अपनी आत्मा के दुःख दूर करने को "अन्य जीव की सहायता लेनी पड़ती है। जैसे यदि किसी जानवर "की रस्सी जिससे वह बंधा हुआ है किसी दीगर बलवान जानवर "के पंजे में पड़ जावे और वह जबरदस्ती उसको पानी की तरफ खींच "रहा है और रस्सी से बंधे हुये जानवर की तकलीफ देख कर मुझको "इतना दुःख उत्पन्न हुआ कि मैं उसको एक सेकेण्ड भी सहन नहीं "कर सकता तो मैंने अपनी आत्मा का दुःख दूर करने के लिये (न कि "उस जानवर के दुःख दूर करने को) यदि रस्सी काट दी और वह "जानवर मुक्त हो गया तो ऐसे बल का प्रयोग करने में पाप नहीं "क्योंकि मैंने तो अपनी कलुषता दूर की है, अपने लिये बल का प्रयोग "किया है न कि उस जानवर के लिये"। इस प्रकार के तर्क हमारे एक मित्र ने किया और उपरोक्त दृष्टान्त देकर जो बंधे हुए जीव के छुड़ाने का कारण निज आत्मा की कलुषता दूर करना बतलाया और उस जीव को छुड़ाने के लिए बल प्रयोग करना ध्येय नहीं बतलाया। इसलिये ऐसे मित्र ने प्रकारान्तर से हमारे ही सिद्धान्त का समर्थन किया। दुःखी जीव की रक्षा के उद्देश्य को सामने न रख कर यदि अपनी आत्मा का क्लेश दूर करने के लिये कोई दुःखी जीव को छुड़ावे तो उस स्थल में उनका कार्य्य कहां तक आत्मिक कल्याण कारक होगा, यह विचारने की

बात है। दूसरे दुःखी जीव को देख कर जो गृहस्थ मात्र के हृदय में स्वतः एक प्रकार सहानुभूति, समवेदना का भाव प्रकट होता है वह भाव उपरोक्त कथनानुसार अष्टम, नवम, दशम गुणस्थानवर्त्ती जीव का उच्च कोटिका अंतरंग धर्म नहीं है। साधु, मुनिराज व उच्च गुणस्थानवर्त्ती महात्मागण ने सांसारिक समस्त मोह ममत्व को त्याग कर दिया है इसलिये वे सांसारिक दुःखी जीवों को देख मुह्य-मान नहीं होते। वे तो यह सब सुख दुःख स्व स्व शुभाशुभ कर्म का फल समझ जीवों को कर्म फल का दृष्टान्त बतला कर सावचेत कर देते हैं परन्तु बन्धन छुड़ाना आत्मिक कल्याण का कारण होता तो अष्टम नवम दशम गुणस्थान वालों की बात तो दूर ही रही पर षष्ठ, सप्तम, गुणस्थानवर्त्ती साधु मुनिराज भी क्यों नहीं छुड़ाते? षष्ट से लगा कर ऊपर के सभी गुणस्थान वाले महापुरुषों का एक ही सिद्धान्त है इसलिये कोई भी ऐसे स्थल में बल प्रयोग द्वारा जीव-रक्षा को धर्म नहीं समझते। फिर यह भी विचारना चाहिए कि दूसरे दुःखी को देख कर जो हमारे मनमें दुख उत्पन्न हुआ वह "राग" (स्नेह, ममत्व, मोह) छोड़ के और कौन सा भाव है? जीव का जीवना वंछे वह "राग" है। मरना वंछे वह द्वेष है। और संसार समुद्र से तीरणा वंछे वह वास्तव में कल्याण का कारण है। बाह्य बन्धन से छुड़ाने से दुःखी जीव का दुःख दूर नहीं होता। उनका कर्म वर्गना हटाने के लिये संवर निर्जरा का मार्ग बतला कर भविष्यत् में जीव के कर्म बन्धन से क्लेश न हो इसका उपाय कर देने से दुःख के कारण को ही रोक दिया गया। यही श्री भगवान का उपदेश है।

'राग' भाव से संसारी जीव का वध, बंध, ताड़ना, भय, शोकादि का दुःख देख के किसी मनुष्य के हृदय में जो तीव्र दुःख हुआ वह तो मोह जनित अनुकम्पा है। इससे आत्मा कलुषित हुई निश्चय, परंतु यह कलुषता दूर तो तब ही हो सकती है जब दुःख का कारणभूत कर्मों का स्वरूप समझ उन कर्मों को नाश करने का प्रयत्न किया जाय। किसी बंधे हुये जीव का बलवान कृत उपद्रव देख के उसका बन्धन काट देना कोई निज आत्मा की कलुषता दूर करने के उपाय नहीं है। आत्मा की ऐसी कलुषता दूर करने के लिये हम अनित्य अशरणादि भावना द्वारा यह विचार करें कि "अहो कर्मों "की क्या विचित्र गति है, इस दुःखी जीव ने न मालूम कैसे कर्मों का "उपार्ज्जन किया था सो इस तरह सताया जाता है, हमें इससे यही "शिक्षा लेनी चाहिये कि हम किसी को पीड़ा न दें ताकि उसके "फलस्वरूप इस तरह पीड़ा भोगनी न पड़े" तो ऐसी भावनाओं से ही कल्याण होगा। संसार में चारों तरफ नजर डालिये, देखियेगा कि दुर्बल पर बलवान का अत्याचार होता ही है, चाहे वह किसी भी नाम से हो और किसी भी कारण से हो। हमारे निज की तरफ से जब तक किसी को दुःख न पहुंचाया गया और दुःख देने वाले की मदद या अनुमोदना न की गई तब तक हमें उस दुःख से कोई वास्ता नहीं, हम उसके भागीदार नहीं। जो दुःख देगा, वह उसका फल भोगेगा। देखनेवाले की उसके लिए कोई जिम्मेवारी हो ही नहीं सकती। दृष्टान्त द्वारा इसको सुगमता से समझाने का प्रयत्न करता हूं—

(१) कोई चोर दूसरे का धन चुराता है—कोई उसे कहके

चुराता है—कोई उस चोर को प्रोत्साहित कर रहा है—वे तीनों अदत्तादान (चौर्य्य) के व्रत को खंडन करनेवाले हैं।

(२) कोई त्रस जीव की हिंसा करता है—कोई उस हिंसक से कह के हिंसा कराता है—कोई उसकी हिंसा का अनुमोदन करता है—ये तीनों अहिंसा व्रत के खंडनेवाले हैं।

(३) कोई मैथुन (कुशील) में रत्त है—कोई कहके मैथुन करवाता हो—और कोइ मैथुन कार्य्य में सहायता दे वे तीनों ब्रह्मचर्य्य व्रत के खंडनेवाले हैं।

अब कोई महात्मा यदि इन तीन प्रकार के दोषी को—चोर, हिंसक औ कुशील सेवन करनेवालों को—नाना प्रकार युक्ति तर्क उपदेशादि से उनके कुकृत्य से निवृत्त कर दें और ऐसी निवृत्ति से चोरी छोड़ने से गृहस्थ के धन का नाश न हो—हिंसा छोड़ने से जीव वध बन्द हो और मैथुन त्याग से यदि प्रियतमा कामिनी विरहातुर होकर आत्महत्या कर ले तो धन रक्षा, जीव रक्षा के द्वारा यदि धर्म होगा तो स्त्री के अपघात से उस महात्मा को क्यों नहीं अधर्म होगा। दो को (चोर हिंसक को) समझाने से अन्य व्यक्ति की धन रक्षा व जीवरक्षा हुई तो ब्रह्मचर्य्य भंग करनेवाले को समझा कर यदि यावज्जीवन ब्रह्मचर्य्य पालने को तत्पर किया जाय और और ऐसे करने से उसकी स्त्री आत्महत्या कर ले तो यदि प्रथम दो को समझाने से धन रक्षा या जीव रक्षा धर्म समझा जाय तो तो तीसरे स्थल में स्त्री की आत्महत्या का अधर्म उपदेशदाता को अवश्य न्याय की दृष्टि से होगा। परन्तु वास्तव में धन रक्षा या जीव

रक्षा या स्त्री का अपघात इन तीनों से महात्मा का कोई ताल्लुक नहीं। उनका उद्देश्य चोर हिंसक व मैथुन भोगी को उनके गर्हित कृत्यों से बचाना था। वह कार्य्य उन्होंने कर दिया। उस कार्य्य के द्वारा किसी दूसरे को लाभ या क्षति हो तो वे उसके लिए जिम्मेवार नहीं। उपदेश देकर कुकृत्यों से बचाने का प्रत्यक्ष व तत्कालीन (direct and immediate result) फल है, उनके आत्मा को पाप कार्य्य से निवृत्त करके उन्नत करना और दूसरे की आत्मा उन्नत करने से साधु ने भी अपने मुक्ति साधन के धर्म का पालन किया। उसके परोक्ष व सुदूरवर्त्ती (indirect and remote result) फल स्वरूप जो धन रक्षा, जीव रक्षा या स्त्री का अपघात हुआ उसके लिए महात्मा कोई भी न्याय या तर्क के सहारे न तो फलभागी है और न दायी है क्योंकि उन्होंने तो चोर, हिंसक, कुशीलियों के तारने के निमित्त उपदेश दिया था। धन रक्षा या जीव रक्षा या स्त्री अपघात के वास्ते उनका उपदेश न था।

यही सिद्धान्त तेरापन्थी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्रीमद् पूजनीय श्री भिक्षु स्वामीजी ने छोटे से दोहे में ऐसे कहा है—

जीव जीवे ते दया नहीं, मरे तेतो हिंसा मति जान।
मारणवाले ने हिंसा कही, नहीं मारे हो तेतो दया गुणखान॥

अर्थात् जीव संसार में जीता है यह दया नहीं और मर रहा है यह हिंसा नहीं। मारनेवाले को हिंसा लगेगी और नहीं मारेगा उसने दया पालन की यही कहा जायगा।

आपातदृष्टि में यह सिद्धान्त लौकिक मतों से विभिन्न होने से नया मालूम देता है। परन्तु सूक्ष्म विचार करने से जीव स्व-स्व कर्म प्रमाणे मरता या जीवन धारण करता है यह ख्याल रखने से अपनी आत्मा से किसी को न मारना ही (तीनों करण से व तीन योग से) अपनी आत्मा की उन्नति का प्रकृष्ट साधन और दूसरे को पाप से छुड़ाने के लिये उपदेश देकर हिंसा से निवृत्त करना भी आत्मिक विकाश को साहाय्य करना है। अन्यथा केवल जीव रक्षा के निमित्त वल प्रयोग द्वारा दूसरे को हिंसादि से निवृत्त करने से क्या लाभ हुआ? जिसको हिंसा से जवरन निवृत्त किया, उनकी मनोवृत्ति में परिवर्त्तन नहीं हुआ (No change of heart)। जब तक मनोवृत्ति में परिवर्त्तन नहीं, तबतक उसने हिंसा को हिंसा समझ के त्याग नहीं किया। वलवान के वल प्रयोग से वह एक दफा हिंसा से निवृत्त हुआ था सही, परन्तु मानसिक परिवर्त्तन (Change of heart) न होने के सबब उसकी आत्मिक उन्नति नहीं हुई। जिस जीव की रक्षा हुई, उसकी रक्षा की दृष्टि से विचार किया जाय तो यह मालूम होगा कि वह जीव जो वचा उसकी आत्मा का क्या कल्याण हुआ। वह जीव एक हिंसक से वच गया परन्तु दूसरे हिंसक से वचने की उसको गैरन्टी नहीं मिली। और वह हिंसक जीव के प्रति द्वेष भाव रक्खेगा और रक्षक व्यक्ति के प्रति ममत्व व कृतज्ञ भाव रक्खेगा तो द्वेष व राग भाव का विपमय फल भोगना ही पड़ेगा। आत्मिक उन्नति के लिए रक्षित जीव को कोई भी साधन रक्षक से नहीं मिला। यदि हन्य

मान् जीव एकान्त समभाव से (Perfect Equanimity) हिंसक जीव के प्रति कषाय रहित होकर "स्वकर्म फल के कारण हमारी यह "हिंसा कर रहा है। हमारा जो आत्मिक गुण है उसको यह नाश "कर नहीं सकता। देह को प्राण से अलग भी कर दे तो मुझे क्या "पर्वाह। मैं स्वकर्म फल समझ कर हिंसक की हिंसा की उपेक्षा "करूंगा—पर अहो यह हिंसक मुझे हिंसा करता हुआ न मालूम "कितना पापकर्म उपार्जन करता होगा—मैं उसको उसके निजकृत "पाप से निवृत्त नहीं कर सकता हूं" इत्याकार आलोचना व चिन्तवन द्वारा निज कर्म बन्धन को शिथिल कर, दूसरे को कर्म बन्धन से बचाने के लिये अपनी असामर्थ्य ही विचार करे तो शुद्ध व उत्तम ध्यान से आत्मिक विकास कर सकता है। राह चलते हुए जीव के हृदय में (Third party—mere spectator) उस हिंसक व हन्यमान को देख कर हन्यमान के प्रति परदुःखकातरता का राग भाव व हिंसक पर द्वेष भाव उत्पन्न हो तो आत्मचिन्तन द्वारा सांसारिक राग द्वेषों को अनर्थ का मूल समझ उक्त कार्य्यों की निन्दना, गर्हना करने से ही निज हृदय की कलुषता दूर कर सकते हैं। संसार में जीव मात्र नाना प्रकार के स्वोपार्जित दुःख एवं कष्ट भोग रहा है उसके लिए किसी भी ज्ञानी का हृदय मलिन न होना चाहिये। हृदय का कालुष्य (मलिनता) तो निज के किसी कुकृत्य के लिये या निज के राग भाव, मोह, ममता, स्नेह, प्रेम बन्धन से होता है। राग, मोह, स्नेह, प्रेम यह सब संसार के बन्धन हैं। संसार मुक्ति का बाधक है। आध्यात्मिक उन्नति में मोह

अन्तरायभूत है। जब निज आत्मा के लिये सब किसी का ध्येय व लक्ष्य यह है कि इस संसार के परिभ्रमण मिटा कर मुक्ति में जाना, सांसारिक समस्त बन्धनों से छुटकारा पाना, तब दूसरे के जीवनकी रक्षा के लिये लालायित होना मोह या स्नेह वश ही होता है। सांसारिक जीवन धारण करना जैसे किसी का चरम लक्ष्य नहीं है, वैसे ही किसी को जीवाने में (असंयम जीवितव्य वंछने में) मोक्ष मार्ग के साधक को फायदा नहीं।

समस्त कर्मों से अलग होना, समस्त कर्मों पर विजय पाना ही जैन धर्म का लक्ष्य है, याने आत्मिक सुख प्राप्त करना ही जैन लोग अपना कर्त्तव्य समझते हैं। संसार में ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो अखंड सुख को नहीं चाहता हो। परन्तु उसकी प्राप्ति का यथार्थ साधन या मार्ग न जानने से इन्द्रियजनित सुख में लीन होकर अपनी आत्मा को कर्म से भारी करके सुख के बदले दुःख की सामग्री तैयार करता है। मनुष्यदेह पाने का मूल उद्देश्य कर्म रहित होकर आत्मिक स्वभाव में रहना अर्थात् मुक्ति ही जैन धर्म का ध्येय है। संसार में रहना जैन धर्म के लिये मुख्य साधन की सामग्री नहीं। संसार से मुक्त होना—जीव को शाश्वत सुख में तल्लीन करना, जैन धर्म का उद्देश्य है। उस उद्देश्य सिद्धि में इहलोक की आशायें परलोक की आशायें, जीवन की आशा, मरण की आशा, भोगविलास की आशायें त्याग देने ही में महत्त्व है। जैन धर्म का सच्चा उपासक ऐहिक सुख को वांछनीय नहीं समझता। परन्तु सच्चे सुख की प्राप्ति करने के साधन से अवश्य सांसारिक सुख भी उत्पन्न होता

है। शास्त्रीय शब्दों में यदि कहा जायं तो निर्जरा की करणी से पुण्य स्वतः ही उत्पन्न होता है, जैसे कि कृषक का उद्देश्य गेहूं पैदा करने का होता है: परन्तु साथ में खाखला स्वतः पैदा होता है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि अपना निज गुण प्रकट करने का ही उद्देश्य सामने रखे।

जैन धर्म का सच्चा उपासक जन्मान्तर में वैषयिक सुख की प्राप्ति काम्य नहीं मानता। क्षणिक पार्थिव सुख को पाकर जीता ही रहूँ ऐसी कल्पना नहीं करता, अथवा सांसारिक दुःखों को सहन करने में असमर्थ होकर मृत्यु को नहीं चाहता, नाना प्रकार के भोग-विलास के सुख की वह आशा नहीं करता। जैन धर्म का उपासक तो मरना, जीना, सुख, दुःख में समभाव रह कर जन्म-मृत्यु को दूर कर शाश्वत आत्मिक सुख के लिये लालायित है। इस सिद्धान्त की पुष्टि अन्य धर्मों में भी मिलती है। जैसे गीता में भी कहा है "सुखं दुःखं समं कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।"

इतना उच्च ध्येय जिसका होता है वह दूसरे के मरणादि से मुह्यमान नहीं हो सकता। दूसरे के शारीरिक वधबंध ताड़नादिक के कष्ट से विचलित होकर उसे क्षणिक दुःख से मुक्त करने के लिये दूसरों के हाथ से वचाने के लिये चेष्टित होना कर्त्तव्य नहीं समझता। दुःख कष्टों का छुटकारा तो कर्म बन्धन से मुक्त होने से होगा, यह जैनी मात्र जानता है। निजके कर्म बन्धन को काटने के लिये जैसे उसका उद्यम होता है वैसे ही दूसरे को कर्म काटने के

लिये उत्साहित करना व उसके लिये उन्हें ज्ञान दर्शन चारित्र का साहाय्य देना ही वह कर्त्तव्य समझता है। अन्य समस्त सांसारिक रक्षणा-वेक्षण, सांसारिक कृत्य, राग द्वेष जनित हैं। किसी की स्नेहवश दूसरे के आक्रमण से रक्षा करना निज का या उनका ज्ञान दर्शन या चारित्र गुण की वृद्धि का सहायक नहीं। विज्ञ पाठक को जरा स्थिर चित्त से विचारने से मालूम होगा कि निष्काम जैन धर्म निर्ममत्व, निर्मोहत्व, वीतरागत्व के प्रति लोगों को उत्साहित करता है। सांसारिक समस्त दुःख, कष्टों को स्व स्व कर्म फलोदय से आये हुये जान कर्म फल का वीर की तरह सामना करते हुये भोगने के लिये जैन धर्म लोगों को इंगित करता है। हर एक तरह की अपने पर आई हुई आफतों को जो धर्म बिल्कुल अविचलित चित्त से सामना करने को कहता है, उस धर्म में जीव रक्षा का विकृत अर्थ होना सम्भव नहीं। अपने द्वारा किसी जीव को कष्ट न पहुंचे। पूर्व कर्म फलस्वरूप दूसरे से पहुंचाया हुआ किसी के कष्ट को दूर करना किसी मनुष्य के क्या देवों के भी साध्यायत्त नहीं। भगवान महावीर के प्रति जितने देव व मनुष्य कृत उपसर्ग हुए, क्या उन पर अनुकम्पा या दया करके कोई देव या इन्द्र दूर न कर सकता था, फिर वे लोग निश्चेष्ट क्यों रहे। क्या वे लोग 'दया' नहीं समझते थे।

दया के विषय में संक्षेपतः कुछ कह कर 'दान' के विषय में अब कुछ कहना उचित है। प्रायशः यह कहा जाता है कि तेरापंथी जैन पंचमहाव्रतधारी साधुओं को छोड़ दूसरे को दान

देने में पाप बतलाते हैं। दान शब्द की जितनी व्याख्यायें प्रचलित हैं, शायद साधारण मनुष्यों ने ऐसी आश्चर्य्यकारी व्याख्या कम ही सुनी होगी। परन्तु न्याय की दृष्टि से विचारने से सत्यासत्य का निर्णय होगा। "श्रीस्थानांग सूत्र" नामक जैन आगम में १० प्रकार का दान बतलाया है—

(१) रोगार्त, शोकार्त, कृपण, दीन मनुष्य को गाजर, मूली आदि अनन्त वनस्पति कायिक जीव, लवणादिक पृथ्वीकाय एकेन्द्रिय जीव, अग्नि, पानी आदि देना "अनुकम्पा दान" [इस दान से नाना प्रकार के एकेन्द्रिय जीवादि को देकर अयोग्य पात्र—जो कि हिंसा झूठ, चोरी मैथुन परिग्रह में रक्त है—को पोषण किया यह दान जीव की उन्नति का सहायक नहीं होता है—पात्र सुपात्र नहीं और वस्तु देने लायक नहीं] इस दान से संसार परिभ्रमण बढ़ता है।

(२) वन्दीजनों को अर्थ देकर छोड़ाना यह "संग्रह दान" नाम से वर्णित है। यह भी जीव की उन्नति का सहायक नहीं है।

(३) ग्रह शान्ति के निमित्त अथवा अन्य शान्ति स्वस्त्ययन के लिये जो ग्रहविप्र, ब्राह्मणगण को दान देते हैं, वह "भयदान" है यह तो सांसारिक कष्ट से डर के देना है। इसमें पारलौकिक कोई कल्याण नहीं है।

(४) मृतक के पीछे जो तीसरे दिन और बारह दिन पर भोज दिया जाता है वह "कालुणी दान" कहा जाता है इससे आत्मा को कोई लाभ नहीं, यह तो सामाजिक प्रथा मात्र है।

(५) वार्षिक छःमाही आदि श्राद्ध में लोक-लज्जा से जो दिया जाता है, वह "लज्जा दान" कहा जाता है।

(६) विवाहादि में वर कन्या को जो दिया जाता है, वह केवल यश कीर्ति के लिये "गर्वदान" नाम से प्रख्यात है।

(७) नट, नटी, मल्लादि को तुष्ट होकर जो दान दिया जाता है वह केवल कर्म बन्ध का हेतु है। इस प्रकार कुपात्र—गणिकादि को जो दान दिया वह "अधर्म दान" है।

(८) धर्म शिक्षा का दान देना, सम्यक् चारित्र का दान देना, छः प्रकार के जीवों को मारने का त्यागरूपी अभय दान देना, यह सब "धर्म दान" है।

(९) सचित्त द्रव्यादिक फिरती लेने की इच्छा से जो दिया जाय वह "कायन्ती दान" है।

(१०) परस्पर सामाजिक प्रथानुसार जो हांति न्योता आदि दिया जाता है वह "कन्तती दान" है।

इन सब में सिर्फ एक धर्मदान ही सच्चा दान है जिसमें चित्त, वित्त, पात्र तीनों ही शुद्ध हैं, यही सर्वथा उत्कृष्ट दान है। शुद्ध मन से शुद्ध वस्तु सत् पात्र को दी गई वही कल्याण का कारण है। अन्यथा यदि शुद्ध मन से यदि कुपात्र को शुद्ध वस्तु दी अथवा अशुद्ध हृदय से यदि कुपात्र को शुद्ध वस्तु दी अथवा शुद्ध हृदय से अशुद्ध वस्तु कुपात्र को दी इत्यादि चित्त वित्त पात्र तीनों में एक भी यदि अशुद्ध है तो वह दान अशुद्ध दान है। वह पारलौकिक कल्याण का हेतु नहीं, क्योंकि उससे दान का प्रकृष्ट फल नहीं मिल सकता। सुपात्र वही है जो हिंसा न करे, झूठ न बोले, चोरी न

करे, मैथुन नहीं सेवे, परिग्रह न रक्खे। सर्व सावद्य त्यागी, निर्लोभी छोड़ दूसरा कोई भी सुपात्र नहीं है। हरएक को दान देने से सांसारिक उपकार होता है परन्तु वह ऊसर क्षेत्र में बीज डालने के न्याय निरर्थक ही जायगा। हिंसक, चोर, झूठ बोलने वाले, कुशीलिया और परिग्रहधारी को जो कुछ देना है वह असंयम का साहाय्य करना है। इसमें लोकोत्तर सुफल की आशा कैसे की जा सकती है? दीन दुःखी जो सब देखे जाते हैं वे स्वीय कर्मवश दुःख सहते हैं। उनको धर्म साहाय्य कर धर्म पथ में दृढ़ कर समचित्त से दुःख कष्ट सहने का उपदेश देकर उनके दुःख को दूर करना ही वास्तव में उनका सच्चा उपकार करना है। रुपया पैसा, अन्न, पानी आदि देकर जो क्षणिक इन्द्रिय सुख देते हैं वह उस दीन दुःखी की आत्मा को उन्नत नहीं करता है। ऐसे दान से मामूली सांसारिक उपकार व कीर्ति के सिवाय और कोई लाभ नहीं। विवेक बुद्धि से इन सब दान की यथार्थता का विचार करने से मालूम होगा कि अयोग्य पात्र को सचित्तादि देकर या रुपये पैसे परिग्रह दिलाकर उनकी क्षणिक तृप्ति से उनके कर्म बन्धन का रास्ता खोल पारलौकिक बन्धन में बंध किया है। ऐसे दान से संसार में भी विशेष लाभ नहीं होता है। एक मात्र धर्म रास्ते में—सुमार्ग में लाना ही प्रकृष्ट दान है। अन्य दान नाम मात्र दान है। आशा है कि विज्ञ पाठक न्याय की कसौटी में इस प्रश्न को रख के आत्मिक उन्नति, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि की दृष्टि से विचारेंगे। सामाजिक एवं ऐहिक, वैषयिक लाभालाभ से इन सब बातों का विचार न करेंगे।

बन्धुओ, प्रवन्ध लंबा हो गया है । मैंने जहां तक हो सका तेरापन्थी सिद्धान्तों के गूढ़ तत्त्वों का सामान्य मात्र दिग्दर्शन कराया है। जो सब विज्ञ पाठक तेरापन्थी मत सम्बन्धी विशेप विवरण और इनके साधु मुनिराजों की आदर्श जीवन-यापन-प्रणाली से स्वयं प्रत्यक्ष अभिज्ञता के अभाव से अनभिज्ञ हैं, वे दूसरों की कल्पित बातों पर ध्यान न देकर निजमें अनुसन्धान व सत्संग से जान लें, यही प्रार्थना है । तेरापंथी जैनियों का आत्मिक उन्नति का आदर्श बहुत उच्च कोटि का है। सांसारिक उन्नति कामी व्यक्तियों के लिये वह विसदृश मालूम हो सके, परन्तु धर्म मुक्ति का साधन है और सांसारिक उन्नति मुक्ति से बहुत दूर है। अतः विज्ञ पाठक इन दोनों की तुलना न करें। सांसारिक उन्नति, भौतिक विकाश, ऐहिक सुख, ऐश्वर्य्य, प्रभुता आदि प्रयासी सज्जन गण जैन धर्म को या कोई भी मत को जिसमें आत्मा की मुक्ति का पंथ बतलाया है सांसारिक उन्नति को दृष्टि से परीक्षा न करें। परन्तु यह बात जरूर ध्यान में रक्खें कि एक भी सच्चे मुक्ति पथ के पथिक के जो आत्मिक शक्ति होगी वह हजारों, लाखों सांसारिक उन्नति प्रयासी विषयभोगलोलुप मनुष्यों की हृदय की शक्ति से अनेक गुणा वेशी है।

—:*:—

श्री वीतरागदेवाय नमः ।

ज्ञान प्रकाश

—००५०५००—

दोहा ।

ॐनमः अरिहंत अतन, आचार्य्यं उवज्झाय।
मुनिः पञ्च परमेष्टिए, ॐकाररै मांय ॥ १ ॥
वलि प्रणमुं गुणवंत गुरु, भिक्षु भरत मझार ।
दान दया न्याय छाणनें, लीधो मारग सार ॥ २ ॥
भारिमाल पट झलकता, तीजे पट ऋषिराय ।
जयगणि चौथे पञ्चमे, मघवा जप मन लाय ॥ ३ ॥
माणिकगणि षष्टम पटे, सप्तम डालगणिंद ।
तासु चरण रज सेवता, बहु नर नारी वृन्द ॥ ४ ॥
स्वर्गत कालुराम गणि, अष्टम पाट दिपाय ।
जैन धर्म और तेरापंथनो, दशोंदिश सिक्को जमाय ॥ ५ ॥
थाप्या तुलसी गणि नवमें, पाट लायक सुखदाय ।
प्रणमुं मन वच काय करि, पांचों अङ्ग नमाय ॥ ६ ॥

पाठ पहला।

देव गुरु धर्म के लक्षण।

देव गुरु धर्माणां लक्षणानि कानिचित् वदामि।

अर्थात् देव गुरु धर्म के कुछ लक्षण कहता हूं।

१—देव अरिहन्त अर्थात् कर्मरूपी वैरी को हणे सो अरिहन्त —सर्व दोष बिमुक्त।

२—गुरु निंर्ग्रन्थ अर्थात् आभ्यन्तर वाह्य परिग्रह रहित पंच महाव्रतधारी वर्तमान पूज्यजी महाराज श्री १००८ श्री तुलसी-रामजी स्वामी।

३—धर्म केवलि प्ररुपित=जैन श्वेताम्बरी तेरापंथी=अर्थात् रागादि शत्रु को जीते सो कहिये जिन और जिनसे कहा हुआ जो धर्म सो कहिये जैनधर्म, श्वेत हैं वस्त्र जिनके सो कहिये श्वेताम्बरी और तेरह मुक्तिके पन्थ (मार्ग) पाले सो कहिये तेरहपन्थी। सो तेरह पन्थ ये हैं :—

पांच सुमति :—

१—ईरिया अर्थात् देखके चलना।

२—भाषा अर्थात् विचार के निरवद्य भाषा बोलना।

३—एषणा अर्थात् शुद्ध और अशुद्ध आहार पानी की गवेषणा (परीक्षा) करना।

४—आयाण भंडमत्त निखेवणा अर्थात् वस्त्र पात्र का यत्न सहित ग्रहण करना और मूकना यानी लेना और पीछा रखना।

५—उच्चार पासवण परिठावणीया अर्थात् मलमूत्र (लघुनीत और वड़ीनीत) को यत्न सहित परिठवो (अच्छी तरह देख के निरवद्य जीवजंतु रहित स्थान में परिठवो अर्थात् फेंकना)।

तीन गुप्ति :—

१ मनो गुप्ति अर्थात् अशुद्ध मन को रोक कर रखना।
२ वचन गुप्ति अर्थात् अशुद्ध वचन को रोक कर रखना।
३ काय गुप्ति अर्थात् अशुद्ध कार्यों से काया को रोक कर रखना।

पंच महाव्रत:—

१ जीवहिंसा करने का तीन करण तीन योग से त्याग। *
२ झूँठ बोलने का तीन करण तीन योग से त्याग।
३ चोरी करने का तीन करण तीन योग से त्याग।
४ मैथुन सेवन करने का तीन करण तीन योग से त्याग।
५ परिग्रह रखने का तीन करण तीन योग से त्याग।

यह तेरह बोल पाले सो कहिये तेरह पंथी।

---

* तीन करण—करना, करवाना और करनेवाले का अनुमोदन करना। तीन योग—मन वचन व काया, तीन करण और तीन योग के समवाय से ४९ भांगे होते हैं जो पच्चिश बोल के २४ वाँ बोल है।

पाठ दूसरा।

नवकार मन्त्र।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहुणं ।

प्रश्न १—

सब मन्त्रोंमें श्रेष्ठ मन्त्र कौन है ?

उत्तर—

नमोकार (नवकार) है।

प्रश्न २—

इस मन्त्र में कितने अक्षर हैं ?

उत्तर—

पैंतीस अक्षर हैं।

प्रश्न ३—

इस मन्त्र में किस किस को नमस्कार किया है ?

उत्तर—

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य्य, उपाध्याय और सर्वसाधु इन पांचों को नमस्कार किया है।

पाठ तीसरा।

—:o:*:o:—

तीर्थंकरों के नाम।

१ ऋषभनाथजी।
(आदिनाथजी)
२ अजितनाथजी।
३ संभवनाथजी।
४ अभिनन्दनजी।
५ सुमतिनाथजी।
६ पद्मप्रभजी।
७ सुपार्श्वनाथजी।
८ चन्द्रप्रभजी।
९ सुविधिनाथजी।
(पुष्पदन्तजी)
१० शीतलनाथजी।
११ श्रेयांसजी।
१२ वासुपूज्यजी।
१३ विमलनाथजी।
१४ अनन्तनाथजी।
१५ धर्मनाथजी।
१६ शांतिनाथजी।
१७ कुंथुनाथजी।
१८ अरनाथजी।
१९ मल्लिनाथजी।
२० मुनिसुव्रतजी।
२१ नमिनाथजी।
२२ नेमिनाथजी
(अरिष्टनेमिजी)।
२३ पार्श्वनाथजी।
२४ महावीरजी।
(वर्द्धमानजी)

प्रश्न १।

पांचवें, दशवें, बीसवें और चौवीसवें तीर्थंकरों के नाम कहो।

उत्तर।

सुमतिनाथजी, शीतलनाथजी, मुनिसुव्रतजी और महावीरजी।

प्रश्न २।

सब मिलकर तीर्थंकर कितने होते हैं तथा आदि अन्त के तीर्थंकरों के नाम कहो ?

उत्तर।

चौवीस होते हैं, इस चौबीसी के आदि में ऋषभनाथजी और अन्तमें महावीरजी।

प्रश्न ३।

ऐसे कौन २ तीर्थंकर हैं जिनके नाम एक से अधिक हैं ?

उत्तर।

पहिले, नौवें, बाईसवें और चौवीसवें इनके नाम एक से अधिक हैं।

प्रश्न ४।

तीर्थंकर २४ होते हैं या इससे न्यूनाधिक भी होते हैं ?

उत्तर।

अवसर्पिणि काल में २४ होते हैं और उत्सर्पिणि काल में भी २४ ही होते हैं इससे न्यूनाधिक नहीं होते। अवसर्पिणी काल में सर्व विपय की अवनति दिखाई पड़ती है और उत्सर्पिणी में उन्नति।

प्रश्न ५—

सुविधिनाथजी कौन से तीर्थंकर थे ?

उत्तर—

नौवें।

प्रश्न ६—

महावीर स्वामी के कितने गणधर थे ?

उत्तर—

ग्यारह थे उनके नाम ये हैं :—

१ इन्द्रभूति। २ अग्निभूति। ३ वायुभूति। ४ व्यक्त। ५ सुधर्मा। ६ मंडित। ७ मौर्यपुत्र। ८ अकम्पित। ९ अचल-भ्राता। १० मेतार्य। ११ प्रभास।

प्रश्न ७—

पांचवें गणधर कौन थे ?

उत्तर—

सुधर्मा स्वामी

———:※:———

पाठ चौथा ।

—:✻:✻:—

(सामायिक लेने की पाटी)

करेमि भंते सामायियं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव नियम मुहूर्त्त (एक दो इत्यादि) पज्जुवासामि दुविहिं तिविहेणं नकरेमि नकारवेमि मनसा वायसा कायसा तस्स भंते पड़िक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

प्रश्न १—

सामायिक किसको कहते हैं ?

उत्तर—

जिसमें सब प्रकार के धार्मिक बिषयोंका लाभ हो उसको सामायिक कहते हैं अर्थात् समता भावरूप सामायिक । (समतारूपी आय-लाभ—जिसमें होता है वह सामायिक—शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ यह है ।

प्रश्न २—

सामायिक में किस कार्यका पच्चक्खाण [त्याग] है ?

उत्तर ।

पापकारी कार्य का त्याग और धर्मकृत्य करना ।

प्रश्न ३ ।

कितने करण और कितने योग से नियम है ?

उत्तर ।

दो करण और तीन योग से अर्थात् मन, बचन, काया करके न स्वयम् पाप-कर्म करे और न अन्य से करावे ।

पाठ पांचवां ।

—:*०*:—

मंगलीक की पाटी ।

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पन्नतो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलि पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।

चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंता सरणं पवज्जामि, सिद्धा सरणं पवज्जामि, साहु सरणं पवज्जामि, केवलि पन्नत्तो धम्मो सरणं पवज्जामि ।

ए चार शरणा सगा और सगा नहीं कोय ।
जो नरनारी आदरे तो अक्षय अमर पद होय ।

प्रश्न १—

लोक में कितने मंगलीक कहे हैं ?

उत्तर—

चार मंगलीक कहे हैं:—१ अरिहंत २ सिद्ध ३ साधु ४ केवलि प्ररूपित धर्म ।

प्रश्न २—

लोक में कितने उत्तम कहे हैं ?

उत्तर—

चार उत्तम कहे हैं:—१ अरिहंत २ सिद्ध ३ साधु ४ केवलि प्ररूपित धर्म ।

प्रश्न ३—

लोक में कितने शरणे ग्रहण करने योग्य कहे हैं ?

उत्तर—

चार शरणे ग्रहण (अङ्गीकार करने) योग्य कहे हैं:—१ अरिहंत २ सिद्ध ३ साधु ४ केवलि प्ररूपित धर्म। अर्थात् इन चार की शरण लेने से जीव संसारसागर से सहज में उत्तीर्ण हो सकता है। जैसे सांसारिक कार्य के लिये किसी बड़े आदमी का सहारा लाभदायक होता है वैसे ही पारलौकिक उन्नति व मुक्ति के लिये ये चार मंगलकारी, उत्तम और शरण ग्रहण करने योग्य हैं।

पाठ छठा।

—:*:—

जीव विचार।

जीव दो प्रकार के होते हैं। सिद्ध और संसारी। सिद्ध तो कर्म क्षय करके संसार से मुक्त होकर सिद्ध क्षेत्र में पहुँचे हैं। जन्म, जरा और मरण के दुःखों से छूट गये हैं, फिर संसार में नहीं आते हैं और संसारी जीव संसार में भ्रमण कर रहे हैं उनके दो भेद हैं:—त्रस और स्थावर। त्रस जीव तो चलते, फिरते, उड़ते, डरते और भागते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं:—बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।

बेइन्द्रियः—शीप, शंख और लटादि जिनके दो इन्द्रियाँ होती हैं। स्पर्शइन्द्रिय और रस-इन्द्रिय अर्थात् शरीर और जिह्वा।

तेइन्द्रियः—कीड़ी, मकोड़ी आदि जिनके तीन इन्द्रियाँ होती हैं। १ स्पर्श २ रस ३ घ्राण अर्थात् शरीर, जिह्वा और नाक।

चौइन्द्रियः—मक्खी, मच्छर और बिच्छू इत्यादि जिनके चार इन्द्रियाँ होती हैं। १ स्पर्श २ रस ३ घ्राण ४ चक्षु अर्थात् शरीर, जिह्वा, नाक और आंख।

पंचेन्द्रिय चार प्रकारके होते हैं:—नरक, तिर्यंचपंचेन्द्रिय, मनुष्य और देव जिनके पांच इन्द्रियाँ होती हैं श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रस और स्पर्श अर्थात् कान, आंख, नाक, जिह्वा और शरीर।

पंचेन्द्रियतिर्यंच पांच प्रकार के होते हैं:—

जलचर (मत्स्यादि)—जल में चलनेवाले।

स्थलचर [गाय, भैंस, घोड़ा इत्यादि]—जमीन पर चलनेवाले चतुष्पद जीव।

उरपरिसप्पा [सर्पादि]—पेट से चलनेवाले।

भुजपरिसप्पा [नकुलादि]—भुजा से चलनेवाले।

खेचर [काक, मयूर, सूआ, कबूतर इत्यादि] आकाश में उड़नेवाले।

स्थावर जीव पांच प्रकार के होते हैं:—पृथ्वी [मूरड़, मिट्टी] इत्यादि। अप (पानी) तेउ (अग्नि) वायु (हवा) वनस्पति (वृक्ष, वेल और बीज इत्यादि)।

स्थावर जीव चलते फिरते नहीं हैं और उनके एक स्पर्शेन्द्रिय होती है।

प्रश्न १।

त्रस और स्थावर जीवों में क्या भेद है कहो ?

उत्तर।

त्रस जीव चलते फिरते हैं और स्थावर जीव चलते फिरते नहीं, स्थिर हैं।

प्रश्न २।

त्रस जीव कितने और कौन कौन से हैं ?

उत्तर ।

त्रस जीव चार प्रकार के हैं:—बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ।

पंचेन्द्रिय के चार भेद हैं:—१ नरक २ तिर्यंच पंचेन्द्रिय ३ मनुष्य ४ देव ।

प्रश्न ३ ।

स्थावर जीव कितने प्रकार के और कौन कौन से होते हैं ?

उत्तर ।

स्थावर जीव पांच प्रकार के होते हैं:—१ पृथ्वी २ अप ३ तेउ ४ वायु ५ वनस्पति ।

प्रश्न ४ ।

हाथी, पानी, घोड़ा, हवा, कुत्ता, बिल्ली और अग्नि इन जीवों में त्रस कौन और स्थावर कौन हैं ?

उत्तर ।

हाथी, घोड़ा, कुत्ता और बिल्ली त्रस हैं, पानी, हवा और अग्नि स्थावर हैं ।

प्रश्न ५ ।

स्थावर जीवों को मारने से पाप लगता है या नहीं ?

उत्तर ।

पाप लगता है । भगवान के वचन हैं कि किसी जीव को मत हणो, जीव का वध महाभय का कारण है । दसवैकालिक सूत्र के छठे

अध्ययन की ११ वीं गाथा में कहा है कि:—

सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउ।
तम्हा पाणिवहं घोरं निग्गंथा वज्जयंतिणं॥

अर्थात् सब जीवों की यही इच्छा रहती है कि सदा जीते रहें कभी नहीं मरें, इस कारण जीव का वध महापाप है इसीलिये निर्ग्रन्थ प्राणी का वध का वर्जन करते हैं।

प्रश्न ६।

धर्म हेतु जीव हणने में दोष नहीं ऐसी श्रद्धा रखनेवाले को सम्यक्त्वी कहिये या मिथ्यात्वी? (सम्यक्त्वी वह जिसकी सच्ची श्रद्धा धर्म पर है और मिथ्यात्वी वह जिसकी धर्म पर श्रद्धा मिथ्यामय है यानी गलत है)।

उत्तर।

मिथ्यात्वी।

नोट:—प्रश्न व्याकरण सूत्र के पहिले आस्रवद्वार में कहा है:—

चेतिए देवकुल चित्तसभा [इत्यादि अनेक पाठ हैं] विविहस्मय अट्ठाए पुढविं हिंसंति मंदबुद्धिया। अर्थात् प्रतिमा, मन्दिर और चित्र-सभा इत्यादि विविध कारणों से पृथ्वीकाय की हिंसा करते हैं वे मंदबुद्धि के धणी हैं।

आचारंग सूत्र में भी कहा है कि धर्म हेतु जीव हणने में दोष नहीं, यह अनार्य के वचन हैं।

इसी प्रकार अन्य सूत्रों में भी जीव हिंसा का फल बहुत बुरा कहा है, जीव हिंसा में कहीं धर्म नहीं है। सिंदूरप्रकर ग्रन्थ में हिंसा के प्रकरण में कहा है कि:—

॥ श्लोक ॥

यदि ग्रावा तोये तरति तरणिर्यद्युदयति,
प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि भजति शैत्यं कथमपि।
यदि क्ष्मापीठं स्यादुपरि सकलस्यापि जगतः,
प्रसूते सत्वानां तदपि न वधः क्वापि सुकृतम् ॥

अर्थात्:—सत्व (जीव) को वध करने (मारने) में किसी प्रकार से धर्म नहीं होता। पाषाण की नाव कभी पानी में नहीं चल (तैर) सकती, यदि दैव संयोग से चाहे वह चलने भी लगे, सूर्य्य चाहे पश्चिम दिशा में उदय हो जाय, सप्तार्चि (अग्नि) चाहे शीतलता को प्राप्त हो जाय, क्ष्मापीठ (पृथ्वी) चाहे सब जगत के ऊपर हो जाय पर जीव हिंसा में कदापि धर्म नहीं हो सकता।

प्रश्न ७।

कर्मों को क्षय करके जो जीव मुक्त हो गये हैं वह फिर संसार में जन्म लेते हैं या नहीं ?

उत्तर।

मुक्त जीव फिर संसार में जन्म नहीं लेते। जैसे दग्ध बीज से अंकुर नहीं प्रकट होता वैसे ही मुक्त जीवों (सिद्धों) का कर्म रूपी बीज दग्ध हो गया है जिससे जन्म रूपी वृक्ष का अंकुर नहीं प्रकट होता।

पाठ सातवां ।

इन्द्रियां किसको कहते हैं ?

जिसके द्वारा जीव शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श के विषयों को भोगता है उसे इन्द्रियाँ कहते हैं। इन्द्रियाँ पांच होती हैं, जैसेः—

१ श्रोत्र इन्द्रिय (कान)।

२ चक्षु इन्द्रिय (आंख)।

३ घ्राण इन्द्रिय (नाक)।

४ रस इन्द्रिय (जीभ)।

५ स्पर्श इन्द्रिय (शरीर)।

१—श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा शब्द सुनते हैं।

२—चक्षु इन्द्रिय द्वारा काला नीला, पीलादि वर्ण देखते हैं।

३—घ्राण इन्द्रिय द्वारा गंध लेते हैं।

४—रस इन्द्रिय द्वारा कटुकादि रस आस्वादन करते हैं।

५—स्पर्श इन्द्रिय द्वारा कर्कशादि स्पर्श वेदते हैं।

प्रश्न १।

इन्द्रियां कितनी होती हैं उनके नाम कहो ?

उत्तर।

इन्द्रियां पांच होती हैं, श्रोत्र इन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय रस इन्द्रिय और स्पर्श इन्द्रिय। (स्पर्श, रस, घ्राण, चक्ष और श्रोत्र

क्रमशः यह पांच इन्द्रियां उत्तरोत्तर बढ़ती हुई एकेन्द्रिय, वेइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेंद्रिय की होती है)।

प्रश्न २।

तीसरी और पांचवी इंद्रिय से क्या जान सकते हैं ?

उत्तर।

तीसरी घ्राण इंद्रिय से गंध लेते हैं और पांचवीं स्पर्श इंद्रिय से स्पर्श वेदते हैं।

प्रश्न ३।

मक्खी, वैल, कुत्ता, सांप, कीड़ी, शीप, हाथी, अग्नि और पानी इन जीवों के कितनी २ इन्द्रियां होती है ?

उत्तर।

वैल, कुत्ता, सांप और हाथी इनके पांच इन्द्रियां होती हैं। मक्खी के चार इन्द्रियां होती हैं। कीड़ी के तीन इन्द्रियां होती हैं। शीप के दो इन्द्रियां होती हैं। अग्नि और पानी के एक इन्द्रिय होती है।

प्रश्न ४।

जिस जीव के आंख होती है उसके नाक होता है या नहीं ?

उत्तर।

जिसके आंख होती है उसके नाक अवश्य होता है। (क्योंकि घ्राणइन्द्रिय के वाद चक्षु इन्द्रिय का क्रम है और जब पीछे के क्रम का इन्द्रिय है तव समझना कि पहिले वाले उनके है हीं)।

प्रश्न ५ ।

जिस जीवके नाक होता है उसके आंख होती है या नहीं ?

उत्तर ।

जिसके नाक होता है उसके आंख होती भी हैं और नहीं भी होती । (क्योंकि तीन इन्द्रिय वाले के स्पर्श रस घ्राण यह तीन ही होंगे किन्तु चतुरिन्द्रय पंचेन्द्रिय के स्पर्श रस घ्राण के अतिरिक्त यथाक्रम चक्षु और श्रोत्र यह बढ़ गये ।

पाठ आठवाँ ।

त्रस जीवों के भेद ।

त्रस जीव दो प्रकार के होते हैं।

सन्नी (संज्ञी) और असन्नी [असंज्ञी] जिस जीव के मन होता है वह सन्नी है और जिसके मन नहीं होता वह असन्नी है ।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय तो केवल असन्नी ही होते हैं और पंचेन्द्रिय जीव सन्नी भी होते हैं और असन्नी भी होते है ।

गर्भ से उत्पन्न होनेवाले जीव (जैसे स्त्री, पुरुष, गाय, भैंस, घोड़ा, हाथी इत्यादि) सन्नी होते हैं । देवता और नारकी गर्भ से उत्पन्न नहीं होते तो भी वे सन्नी ही होते हैं । देवता उत्पात शय्या में उत्पन्न होते हैं और नारकी जीव कुम्भी में उत्पन्न होते हैं और जो जीव छमोछम अर्थात् बिना गर्भ के केवल स्पर्श से ही उत्पन्न होते हैं वे असन्नी हैं ।

प्रश्न १ ।

नारकी, देव, मनुष्य, घोड़ा, हाथी, गाय, भैंस, ऊंट, कबूतर, काग, सांप, मत्स्य, कीड़ी, बिच्छू, शङ्ख, मच्छर, मकड़ी, लट और खटमल इन जीवों में सन्नी और असन्नी बताओ ?

उत्तर ।

नारकी, देव, गाय और भैंस सन्नी हैं और कीड़ी, बिच्छू, शङ्ख, मच्छर, मकड़ी, लट और खटमल असन्नी हैं । मनुष्य, घोड़ा, हाथी, ऊँट, कबूतर, काग सांप और मत्स्य सन्नी भी होते हैं और असन्नी भी होते हैं यानी जो गर्भ से उत्पन्न होते हैं वे सन्नी हैं और जो विना गर्भ उत्पन्न होते हैं वे असन्नी हैं।

प्रश्न २।

सन्नी जीवों के इन्द्रियां कितनी होती हैं ?

उत्तर ।

पांच इन्द्रियां होती हैं।

प्रश्न ३।

क्या पंचेन्द्रिय जीव सब सन्नी होते हैं ?

उत्तर ।

सब सन्नी नहीं होते, जिनके मन है वे सन्नी हैं और जिनके मन नहीं हैं, वे असन्नी हैं। असन्नी पंचेन्द्रिय दो गति में ही होते हैं, तिर्यंच गति और मनुष्य गति देव व नारकी में नहीं होते।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय जो असन्नी होते हैं, उसका उदाहरण—जैसे वर्षा के होने से जल मिट्टी के स्पर्श से मेंढ़क एकाएक उत्पन्न हो जाते हैं और द्वीपान्तर में असंख्य असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय होते हैं वह अपने यहां देखने में नहीं आते, ज्ञानी पुरुषों के बचनों से ही जाने जाते हैं।

जलचर, स्थलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर पांच ही प्रकार के तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों में असन्नी भी होते हैं।

मनुष्य जो असन्नी होते हैं सो दृष्टिगोचर नहीं होते, मनुष्यों के अशुचि स्थान यथा मल, मूत्र, वमन और पित्तादि में उत्पन्न होते हैं, उनको असन्नी मनुष्य कहते हैं। उनका शरीर अंगुल के असंख्यात भाग के समान होता है अर्थात् बहुत ही छोटा होता और अन्तर मुहूर्त आयुष्य होता है। (अन्तर मुहूर्त—याने ४८ मिनिट से कम)

पाठ नौवां ।

स्थावर जीवों के भेद ।

स्थावर जीव के एक स्पर्श इन्द्रिय होती है अर्थात् शरीर मात्र ही होता है, ये जीव पांच प्रकार के होते हैं।

१ पृथ्वी काय के जीव—पृथ्वी ही जिनका शरीर है, जैसे मूरड़, मिट्टी, सोना, चांदी, हिंगुल (हींगलू) हरताल इत्यादि जो खान में से निकाले जाते हैं, वह जीव सहित हैं, फिर अन्य वस्तु का संयोग या शस्त्र परिणित होने से जीव रहित हो जाते हैं।

२ अप्काय के जीव—पानी ही जिनका शरीर है जैसे:—वर्षा का पानी, ओस का पानी, कूँवेका पानी. समुद्र का पानी इत्यादि जीव सहित होते हैं किन्तु अन्य वस्तु संयुक्त वा शस्त्र परिणित होने से जीव रहित हो जाते हैं।

३ तेउ काय के जीव—अग्नि ही जिनका शरीर है जैसे:—अङ्गार मुर्मुरिया [पतंगा], झल और विजली इत्यादि जीव सहित होते हैं, फिर अन्य वस्तु संयुक्त वा शस्त्र परिणित होने से जीव रहित हो जाते हैं।

४ वाउ काय के जीव—वायु ही जिनका शरीर है जैसे:—पवन, घनवात, तनुवात इत्यादि जीव सहित होते हैं और अचित वायु से सचित वायु के जीवों का घात होता है। वायु का शस्त्र वायु ही है। दूसरे कोई भी शस्त्र द्वारा वायु काय का घात नहीं हो सकता।

५ वनस्पति काय के जीव—वनस्पति ही जिनका शरीर है जैसे:—वृक्ष, वेल, फल, फूल और वीज इत्यादि जीव सहित होते हैं पर अन्य वस्तु का संयोग वा शस्त्र परिणित होने से जीव रहित हो जाते हैं।

वनस्पति दो प्रकार की होती हैं—प्रत्येक और साधारण। प्रत्येक उसे कहते हैं जिस के एक शरीर में एक ही जीव होता है और साधारण उसे कहते हैं जिसके एक शरीर में अनंत जीव होते हैं।

उपरोक्त पांच प्रकार के स्थावर जीव कहलाते हैं ये जीव असन्नी होते हैं और इनके दो भेद होते हैं :—सूक्ष्म और वादर।

१ सूक्ष्म जीव उन्हें कहते हैं जो नजर नहीं आते और सर्व लोक में भरे हैं उनसे सूई के अग्रभाग भर भी स्थान खाली नहीं है वह जीव किसी से नहीं रुकते और न उन जीवों से किसी वस्तु की रुकावट होती है।

२ वादर जीव उन्हें कहते हैं जो देखने में आते हैं:—जैसे मिट्टी, पानी, अग्नि, पवन और वृक्ष इत्यादि।

त्रस जीव तो सब वादर ही होते हैं।

प्रश्न १।

स्थावर जीव कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर।

पांच प्रकार के होते हैं:—१ पृथ्वी, २ अप, ३ तेज, ४ वाउ ५ वनस्पति।

प्रश्न २।

आम, निम्बू, गुलाब के फूल और पत्ते किस काय के जीव हैं?

उत्तर।

वनस्पति काय के जीव हैं।

प्रश्न ३।

स्थावर जीव जो देखने में आते हैं वह सूक्ष्म हैं या वादर हैं?

उत्तर।

वादर हैं। सूक्ष्म जीव देखने में नहीं आते हैं।

पाठ दशवां ।

जीव और कर्मों का सम्बन्ध ।

संसारी जीव कर्मों के संयोग से संसार में पर्य्यटन कर रहे हैं वे कर्म आठ प्रकार के होते है, जैसेः—

१ ज्ञानावरणीय कर्म—ज्ञान को रोकता है।

२ दर्शनावरणीय कर्म—दर्शन को रोकता है यानी देखने में वाधा डालता है और इस कर्म के उदय होने से जीव को निद्रा भी आती है।

३। वेदनीय कर्म—इससे जीव सुख और दुःख भोगता है यानी साता वेदनीय से सुख भोगता है और असाता वेदनीय से दुःख भोगता है।

४ मोहनीय कर्म—यह जीव को मोहग्रस्त याने संसार में मतवाला कर देता है और क्रोध, मान, माया और लोभ को प्रवल करता है।

५ आयु कर्म—इससे जीव जिस गति की आयुष्य वांधता है सो भोगता है।

६—नाम कर्म—इससे जीव गति, शरीर और वर्णादि पाता है।

७—गोत्र कर्म—इससे जीव ऊँच और नीच गोत्र पाता है।

८ अन्तराय कर्म—यह जीव के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में बाधा डालता है।

प्रश्न १।

किसी विद्यार्थी को परिश्रम करने पर भी पाठ याद नहीं होता है तो बताओ कि उसके किस कर्म का उदय है?

उत्तर।

ज्ञानावरणीय कर्म का उदय है।

प्रश्न २।

किसी पुरुष, स्त्री वा किसी अन्य जीव को निद्रा बहुत आती हो तो बताओ कि उसके किस कर्म का उदय है?

उत्तर।

दर्शणावरणीय कर्म का उदय है।

प्रश्न ३।

किसी व्यक्ति की देह में वेदना अधिक रहती है तो बताओ कि उसके किस कर्म का उदय है?

उत्तर।

असाता वेदनीय कर्म का उदय है।

प्रश्न ४।

किसी व्यक्ति के क्रोध अधिक है, हास्य, भय और शोक विशेष है तो बताओ कि उसके किस कर्म का उदय है?

उत्तर।

मोहनीय कर्म का उदय है।

प्रश्न ५।

कोई जीव नरकादि आयुष्य भोगता है तो बताओ कि उसके किस कर्मका उदय है ?

उत्तर ।

आयुः कर्म का उदय है।

प्रश्न ६—

किसी पुरुप का शरीर सुन्दर है, उसके वचन सबको प्रिय लगते हैं और उसकी यशकीर्त्ति सर्वत्र होती है तो बताओ कि उसके किस कर्म का उदय है ?

उत्तर—

शुभ नाम कर्म का उदय है।

प्रश्न ७—

कोई जीव क्षत्रिय वंश राजकुलादि में उत्पन्न होता है तो बताओ कि उसके किस कर्मका उदय है ?

उत्तर ।

उच्च गोत्र कर्म का उदय है।

प्रश्न ८।

किसी के पास दानादिक की सामग्री होने पर भी (दान) दिया नहीं जाता और धन प्राप्त होने पर भी भोगा नहीं जाता तो बताओ कि उसके किस कर्म का उदय है ?

उत्तर ।

अन्तराय कर्म का उदय है।

पाठ ग्यारहवाँ।

—:*:*:—

किस कर्तव्य से जीव कर्मों से लिप्त होता है।

पंच आस्रवद्वार सेवन करने से जीव कर्मों से लिप्त होता है, सो वे ये हैं :—

१ प्राणातिपात—जीव हिंसा करे सो आस्रव।

२ मृषावाद—झूठ बोले सो आस्रव।

३ अदत्तादान—चोरी करे सो आस्रव।

४ मैथुन (स्त्री सेवन) करे सो आस्रव।

५ परिग्रह मेले—[धन धान्यादि इकट्ठा करे] सो आस्रव।

ये पंच आस्रवद्वार जीवों के कर्म लगने के द्वार हैं। उदाहरणार्थ:—

१ जिस प्रकार तालाब में नाले होते हैं, जिनके द्वारा उसमें पानी आता है, वैसे ही जीवरूपी तालाब के आस्रव रूपी नाले हैं जिनमें से कर्मरूपी पानी आता है।

२ जैसे हवेली में बारणा [दरवाजा] होता है जिसमें होकर मनुष्यादि आते हैं, वैसे ही जीवरूपिणी हवेली में आस्रव रूपी बारणा है जिसमें से कर्मरूपी मनुष्यादि आते हैं।

३ नावा [नाव] के छिद्र होते हैं जिनमें से उसमें पानी आता है। वैसे ही जीवरूपी नावा के आस्रव रूपी छिद्र हैं जिसमें से कर्मरूपी पानी आता है।

जीव और आस्रव की एकता।

जीव और आस्रव एक ही है, जैसे नालादि सर्व समुदाय मिल कर तालाव कहलाता है, तालाव और नाले अलग नहीं हैं। परन्तु नालों द्वारा जो पानी आता है वह अन्य वस्तु है। वैसे ही जीव और आस्रव एक ही हैं और आस्रवद्वार करके जो कर्म [पुद्गल] आकर जीव के लगते हैं वे अन्य वस्तु हैं (चार स्पर्श रूपी द्रव्य हैं)। इसी तरह हवेली और नावा का दृष्टान्त भी समझना चाहिये।

प्रश्न १—

पांच आस्रवद्वारों के नाम बताओ ?

उत्तर—

१ जीव हिंसा २ झूठ ३ चोरी ४ मैथुन ५ परिग्रह।

प्रश्न २—

एक विद्यार्थी ने किसी अन्य विद्यार्थी की पुस्तक चुराई तो बताओ कि उसने कौन आस्रवद्वार सेवन किया ?

उत्तर—

अदत्तादान, तीसरा आस्रवद्वार सेवन किया।

प्रश्न ३—

एक लड़के ने किसी अन्य लड़के को मारा और जब अध्यापक ने उससे पूछा तो वह बोला कि मैंने नहीं मारा तो बताओ कि उसने कौन आस्रवद्वार सेवन किया ?

उत्तर—

मृषावाद दूसरा आस्रवद्वार सेवन किया और जीव हिंसा प्रथम आस्रवद्वार की भी क्रिया उसको लगी।

प्रश्न ४।

एक लड़के को अच्छे कपड़े पहनने की बड़ी लालसा रहती है इसलिये नित्य नये-नये कपड़े बनवाता है तो बताओ कि वह कौन आस्रवद्वार सेवन करता है?

उत्तर।

पांचवां (परिग्रह) आस्रवद्वार सेवन करता है।

—:*o*:—

पाठ बारहवाँ ।

—:०:※:०:—

कषाय प्रकरण ।

कषाय उसे कहते हैं जो आत्मा को कसती यानी दुःख देती है ।

कषाय चार हैं :—

१ क्रोध—कोप वा गुस्से को कहते हैं ।

२ मान—अहंकार वा घमण्ड को कहते हैं ।

३ माया—छल, कपट वा दगा करने को कहते हैं ।

४ लोभ—लालच वा तृष्णा को कहते हैं ।

ये चारों ही कषायें पाप बंध के मुख्य कारण हैं और जीव को बहुत दुःख देनेवाले हैं ।

दशवैकालिक के आठवें अध्ययन की

४० वीं गाथा ।

कोहो अ माणो अ अणिग्गहीआ,

माया अ लोभो पवड्ढमाणा ।

चत्तारि एए कसिणा कसाया,

सिंचंतियि मूलाइ पुणप्भवस्स ॥ १ ॥

प्रश्न १ ।

कषायें कितनी हैं, उनके नाम बताओ ?

उत्तर ।

चार हैं:—क्रोध, मान, माया और लोभ

प्रश्न २

कषाय करने से क्या हानि होती है ?

उत्तर ।

जीव कर्मों से भारी होकर संसार पर्य्यटन करता है और वार २ जन्म-मरणरूपी वृक्ष के मूल को सींचता है।

प्रश्न ३ ।

विशेष लालची और बिशेष घमण्डी आदमी के किन २ कषायों का प्रबल उदय होता है ?

उत्तर ।

लोभ और मान इन दो कषायों का प्रबल उदय होता है।

—:※:—

पाठ तेरहवां।

गति प्रकरण

जीव की अवस्था वदलने को गति कहते हैं।

गति चार हैं:—१ नरक गति, २ तिर्यंच गति, ३ मनुष्य गति ४ देवगति।

१ नरक गति—इस पृथ्वी के नीचे सात नरक हैं, उन नरकों में वड़ा भारी दुःख है। उनमें रहनेवाले जीवों को रात दिन दुःख ही दुःख सहना पड़ता है, एक समय मात्र भी सुख नहीं मिलता। पशु वा मनुष्य मर कर जव इन नरकों में उपजते हैं तव उनको नरक गति को प्राप्त हुआ कहते हैं। इस गति के जीव पंचेन्द्रिय ही होते हैं। जो जीव मांस के लोलुप होकर जीवों का वध करते हैं नरक में परमाधामी देव सण्डसी (संडासे) से उनके शरीर का मांस चूंट २ (नोच) के खिलाते हैं। जो जीव झूठ वोलते हैं नरक में परमाधामी देव संडसी (संडासे) से उनकी जीभ वाहर निकालते हैं। जो जीव चोरी करते हैं उनको नरक में परमाधामी देव मुद्गरों से मार कर चूर्ण २ कर देते हैं। जो जीव परस्त्री के लम्पट होते हैं उनको नरक में परमाधामी देव अग्निवर्णी पुतली वना कर आलिंगन कराते हैं और विषय नजर से देखनेवालों की आंखों में अग्निवर्णी सलाका घुसेड़ते है। जो जीव लोभी होकर घर के धन्धे में रहते हैं उनको नरक में परमाधामी देव अग्निवर्ण रथ

बना कर उसके अग्निवर्ण झुसरा (जुआ) लगा कर उसमें जोतते हैं, इसी रीति से अनेक प्रकार के दुःख देते हैं और इसके अतिरिक्त दश प्रकार की अनन्त गुणी क्षेत्र वेदना नित्य सहनी पड़ती है। उदाहरणार्थ जैसे :—

एक शीत वेदनावाले नेरिये (नारकी) को मनुष्य लोक में पौष माघ महीने में हिमालय पर्वत के ऊपर रख दें तो उसको ऐसी निद्रा आ जाती है, मानो कोई मनुष्य शीतकाल में सोड (लिहाफ) ओढ़ कर आनन्द से सो गया हो। और उष्ण वेदनावाले नेरिये को मनुष्य लोक में धूम्र रहित अत्यन्त उष्ण खैरकाष्ठ की अग्नि में रख दें तो उसे बहुत आनन्द के साथ निद्रा आ जाती है, मानो कोई मनुष्य (उष्णकाल में) बहुत अच्छे मण्डप में छिड़काव करके सो गया हो। यह तो केवल दृष्टान्त मात्र है, किन्तु उनको सुख की प्राप्ति कभी होती ही नहीं, नेत्र स्फुर्के इतने समय तक भी उनको सुख नहीं मिलता।

२ तिर्यंच गति—स्थावर जीव, (अर्थात् पृथ्वी, अप, तेउ, वाउ और वनस्पति।) विकलेन्द्रिय जीव (अर्थात् बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय) और तिर्यंच पंचेन्द्रिय (पशु, पक्षी इत्यादि) को तिर्यंच कहते हैं। जब कोई जीव मर कर इन योनियों में जन्म लेता है उसको तिर्यंच गति में उत्पन्न हुआ कहते हैं इस गति में एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय सब जाति के जीव होते हैं।

३ मनुष्य गति—कोई जीव मर कर मनुष्य गति में उत्पन्न

होता है उसको मनुष्य गति में उत्पन्न हुआ कहते हैं। मनुष्य गति के जीव पंचेन्द्रिय ही होते हैं।

४ देव गति—कोई जीव मर कर देव लोक में उत्पन्न होता है उसको देव गति में उत्पन्न हुआ कहते हैं। देव गति के जीव भी पंचेन्द्रिय ही होते हैं। उनको अनेक प्रकार के उत्तम २ भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त होती है और दिन रात सुख में मग्न रहते हैं।

५ मोक्ष गति—ऊपर कही हुई चार गतियों के अतिरिक्त पांचवीं मोक्ष गति भी होती है। जब कोई जीव सब कर्मों से मुक्त हो जाता है तब वह इस मोक्ष गति को प्राप्त होता है।

प्रश्न १।

गति कितनी होती हैं उनके नाम बताओ ?

उत्तर।

चार होती हैं—नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति। इन चार सांसारिक गतियों के अतिरिक्त पांचवीं मोक्ष गति भी होती है।

प्रश्न २।

सांसारिक गतियों में कौन गति सबसे अच्छी है और कौन सबसे बुरी है ?

उत्तर।

सबसे अच्छी मनुष्य गति है क्योंकि मनुष्य गति से जीव सर्व कार्य साधन कर मोक्ष गति को प्राप्त हो सकता है और सबसे बुरी नरक गति है किन्तु संसार में परिभ्रमण करने के लिये सबसे बुरी

तिर्यंच गति है क्योंकि तिर्यंच में गया हुआ जीव निगोद में अनन्त काल पर्यन्त जन्म मरण करता है और अनेक कष्ट सहता है।

प्रश्न ३।

नरक कितने होते हैं, वे पृथ्वी के ऊपर हैं या नीचे और वहां के रहनेवाले जीवों को सुख है या दुःख?

उत्तर।

नरक सात हैं, वे पृथ्वी के नीचे हैं, वहां के रहनेवाले जीव सब दुःखी ही हैं, सुखी कोई भी नहीं है।

प्रश्न ४।

बिल्ली, बैल, मच्छी, नारकी वृक्ष, मनुष्य, घोड़ा, बन्दर, कीड़ा और देव ये सब जीव किस २ गति के हैं।

उत्तर।

बिल्ली, बैल, मच्छी वृक्ष, घोड़ा, बन्दर और कीड़ा ये तिर्यंच गति के जीव हैं, नारकी नरक गति में हैं, मनुष्य मनुष्य गति में हैं, और देव देव गति में हैं।

प्रश्न ५।

एक गाय मर कर मनुष्य हो गयी तो बताओ कि वह पहिले किस गति में थी और फिर किस गति में चली गयी।

उत्तर।

पहिले तिर्यंच गति में थी और फिर मनुष्य गति में चली गयी।

पाठ चौदहवाँ ।

——:*:——

छः द्रव्य प्रकरण ।

छः द्रव्य ये हैं:—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय ।

१ धर्मास्तिकाय-इसका चलन साहाय्यगुण है अर्थात् जीव और पुद्गल को चलने फिरने में सहायता देता है ।

२ अधर्मास्तिकाय—इसका गुण स्थिरता है अर्थात् जीव और पुद्गल को स्थिर रखता है ।

३ आकाशास्तिकाय—इसका गुण भाजन है, जैसे पानी का भाजन घट होता है वैसे ही जीव और पुद्गल का भाजन आकाशास्तिकाय है क्योंकि सब पदार्थ आकाश में ही रहते हैं ।

४ काल—इसका गुण परिवर्तन है, सब जीव और अजीव पर काल वर्तता है, सेकेंड, मिनिट, घड़ी, पहर, दिन रात्रि इत्यादि सब काल के ही भेद हैं, काल वस्तु को नई और पुरानी करता है ।

५ पुद्गलास्तिकाय—इसका गलन मिलन स्वभाव है अर्थात् गलता है, सड़ता है, जलता है, लाल से काला होता है और काले से श्वेत हो जाता है इत्यादि ।

६ जीवास्तिकाय—इसका गुण चेतनता है, ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये सब जीव के लक्षण हैं ।

इन छः द्रव्यों में पांच (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल और पुद्गलास्तिकाय) अजीव द्रव्य हैं और एक (जीवास्तिकाय) जीव द्रव्य है।

प्रश्न १।

धर्मास्तिकाय जीव के किस काम में आता है ?

उत्तर।

चलने फिरने के काम में आता है।

प्रश्न २।

अधर्मास्तिकाय जीव के किस काम में आता है ?

उत्तर।

सोने और बैठने के काम में आता है।

प्रश्न ३।

आकाशास्तिकाय जीव के किस काम में आता है ?

उत्तर

आकाशास्तिकाय के भीतर जीव और पुद्गल बसते हैं।

प्रश्न ।

काल जीव के किस काम में आता है ?

उत्तर।

कार्य करने के काम में आता है ?

प्रश्न ५।

पुद्गलास्तिकाय जीव के किस काम में आता है ।

उत्तर ।

खाने, पीने, पहिरने और ओढ़ने के काम में आता है।

प्रश्न ६ ।

लोक किसे कहते हैं ?

उत्तर ।

जिसमें छः द्रव्य विद्यमान हों, उसे लोक कहते हैं।

प्रश्न ७ ।

अलोक किसे कहते हैं ?

उत्तर ।

जिसमें आकाशास्तिकाय के अतिरिक्त और कोई द्रव्य न हो उसे अलोक कहते हैं।

पाठ पन्द्रहवाँ ।

नव पदार्थ प्रकरण ।

नव पदार्थ के नाम—१ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आस्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा, ८ वंध, ९ मोक्ष ।

१ जीव—इसका लक्षण चैतन्य है ।

२ अजीव—इसका लक्षण अचैतन्य है जिसे जड़ भी कह सकते हैं।

३ पुण्य—शुभ कर्म को कहते हैं, जिसके संयोग से जीव पुद्गलिक सुख भोगता है ।

४ पाप—अशुभ कर्म को कहते हैं, जिसके संयोग से जीव दुःख भोगता है ।

५ आस्रव—यह कर्म्मों को ग्रहण करता है ।

६ संवर—यह आते हुए कर्म्मों को रोकता है ।

७ निर्जरा—यह कर्म्मों को क्षयकर जीव को देशथकी (अंश से) उज्ज्वल करता है ।

८ वंध—जीव के जो शुभाशुभ कर्मों के समूह वंधे हुए हैं उसे वंध कहते हैं और जब वे कर्म जीव के रसोदय में आकर जीव को सुख और दुःख देते हैं उस समय पुण्य और पाप कहलाते हैं ।

९ मोक्ष—जीव जब सब कर्मों से मुक्त होकर सदा के लिए आत्मिक सुख को प्राप्त होता है और सांसारिक दुःखों से छूट जाता है यानी उस स्थान से फिर संसार में नहीं आता उसे मोक्ष कहते हैं ।

नव पदार्थों में जीव, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये पांच तो जीवपदार्थ हैं और अजीव, पुण्य, पाप और बंध ये चार अजीव पदार्थ हैं ?

प्रश्न १।

छः द्रव्य में जो पांच अजीव द्रव्य हैं वे नव पदार्थ के किस पदार्थ में हैं।

उत्तर।

अजीव पदार्थ में हैं।

प्रश्न २।

पुण्य, पाप और बंध, छः द्रव्यों में से किस द्रव्य में हैं ?

उत्तर

पुद्गलद्रव्य में हैं।

प्रश्न ३

अजीव में कितने द्रव्य हैं ?

उत्तर।

पांच द्रव्य हैं, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, काल और पुद्गलास्तिकाय।

प्रश्न ४।

पुण्य, पाप और बंध में कितने द्रव्य हैं ?

उत्तर—

एक पुद्गल द्रव्य है।

प्रश्न ५ ।

पुद्गल द्रव्य नव पदार्थों में से कितने पदार्थों में है ?

उत्तर ।

अजीव, पुण्य, पाप और बंध इन चार पदार्थों में है ।

प्रश्न ६ ।

जीव द्रव्य कितने पदार्थों में है ?

उत्तर ।

जीव, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन पांच पदार्थों में है ।

प्रश्न ७ ।

आस्रव पदार्थ जीव है या अजीव ।

उत्तर ।

जीव है, कर्म ग्रहण करने के द्वार है ।

सामायक पारनेकी पाटी ।

—:*०*:—

नवमा सामायक विरमण व्रत के विषे ज्यो कोई अतिचार दोष लागो हुवे ते आलोऊं। सामायक अणपूरी पारी होय, पारवो विसाऱ्यो होय, मन, वचन, काया का जोग माठा प्रवर्ताया होय सामायक में राजकथा, देशकथा, स्त्री-कथा : भत्त-कथा करी होय तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

उपदेशिक ढालें।

ढाल १ ली।

(देशी—जब वक्त पड़ा तब कोई नहीं)

अब मोह नींद से उठ चेतन, क्यूं भूल रहा जोवन धन में।
तेरे सुख के साथी मात पिता, सुत बन्धव सोच जरा मन में॥
नर जन्म अमूल्य मिला तुझको, क्यों सोय रहा सुख चैनन में।
कर ले अबतो सतसंग जरा, समझाय रहे गुरु सैनन में॥१॥
तेरा कुटुम्ब कबीला स्वारथ का, बिन स्वारथ देत दगा खिन में।
यह चांदनी चेतन दो दिन की, बिन काम लुभाय रहा किन में॥२॥
दिन खेल कूद में खोय दिया, नहीं धर्म्म किया बालापन में।
प्रभु का गुन गान किया न कभी, विषया वश हो भर जोवन में॥३॥
हय हाथी ऊपर केल करा, रंगरेल करा चढ़ स्यंदन में।
चरचा तन केसर चन्दन में, नहीं चित्त दिया गुरु वन्दन में॥४॥
अब वृद्ध भया कच श्वेत भया, कफ वाय ने घेर लिया छिन में।
तेरी डगमग नाड़ी डोल रही, मनु कम्पन वाय हुवा तन में॥५॥
गये रावण विक्रम भोज बली, प्रजली मनु होरी फागन में।
उस मौज का खोज रहा न रत्ती, नर तूं भूली किस बागन में॥६॥
दया धर्म्म का संग्रह तूं कर ले, धर ले गुरु शिक्षा कान-न में।
कहा सोहन उत्तम धर्म्म यही, जिन आगम वेद पुरानन में॥७॥

अथ श्री नवकारनो छन्द ।

सुख कारण भवियण, समरो नित नवकार ।
जिन शासन आगम, चौदह पूरवनो सार ॥ १ ॥

ए मन्त्रनी महिमा, कहितां न लहुं पार ।
सुरतरु जिम चिन्तित, वंछित फल दातार ॥ २ ॥

सुर दानव मानव, सेवा करै कर जोड़ ।
भुवि मण्डल विचरै, तारै भवियण कोड़ ॥ ३ ॥

सुरछंन्दे विलसै, अतिशय जास अनन्त ।
पद पहिले नमिये, अरिगञ्जन अरिहन्त ॥ ४ ॥

जे पन्द्रह भेदे सिद्ध थया भगवन्त ।
पञ्चमी गति पहोंता, अष्ट कर्म करि अन्त ॥ ५ ॥

कल अकल स्वरूपी पञ्चानन्तक देह ।
जिनवर पाय प्रणमूं, बीजे पद वलि एह ॥ ६ ॥

गच्छभार धुरन्धर, सुन्दर शशिहर शोभ ।
करै सारण वारण, गुण छत्रीसे थोभ ॥ ७ ॥

श्रुत जाण शिरोमणि, सागर जिम गम्भीर ।
तीजै पद नमिये, आचारज गुणधीर ॥ ८ ॥

श्रुतधर गुण आगर, सूत्र भणावै सार ।
तप विधि संयोगे, भाखै अर्थ विचार ॥ ९ ॥

मुनिवर गुण युक्ता, कहिये ते उवज्झाय ।
पद चौथे नमिये, अहो निशि तेहना पाय ॥ १० ॥

पंचास्रव टाले, पालै पञ्चाचार।
तपसी गुणधारी, वारे विषय विकार ॥ ११ ॥
त्रस थावर पीयर, लोक माहीं जे साध।
त्रिविधे ते प्रणमुं परमारथ जिणे लाध ॥ १२ ॥
अरि करि हरि सायणि, डायणि भूत बैताल।
सवि पाप पणासे, बाधे मंगल माल ॥ १३ ॥
इण समरयाँ संकट दूर टले तत्काल।
इम जंपै जिन प्रभु, सूरि शिष्य रसाल ॥ १४ ॥

—:※:—

श्री पञ्च परमेष्टि को स्तवन।

दोहा

पांच पद परमेश्वरु, मोटा महागुणखाण।
सर्व लोक में सार ए, विधसूं करूं वखाण ॥ १ ॥
पहिले पद अरिहन्त भजो दूजै सिद्ध दयाल।
आचार्य तीजै आख्यो, चौथे उपाध्याय भाल ॥ २ ॥
साध सकल पद पंचमें, समर्‌यां शिव सुख होय।
गुण गाऊं ए ओलखीं, सूत्र स्हामो जोय ॥ ३ ॥
पांच पदां में गुण घणा, पूरा कह्या न जाय।
नहीं पहोंचे नर नारियां, इन्द्र कहत थक जाय ॥ ४ ॥
पिण थोड़ा सा प्रकट करूं, ल्हेश मात्र लिव लाय।
गुणमाला गुणवन्तरी, समरूं हूं सुखदाय ॥ ५ ॥

ढाल

बीस विहरमान सदा शाश्वता, जघन्य पदे परिमाणं।
सौ साठ ने नित २ नमियै, उत्कृष्टे पद आणं॥
भवियण नमो अरिहन्ताणं, नमो सिद्ध निरवाणं॥
मन शुद्ध करने भजिये भवियण ते पामैं कल्याणं॥भ०॥ १॥
अनन्त ज्ञान दर्शण चारित्र तप, बल कर अनन्त आणन्दा॥
एक सहस्र आठ लक्षण विराजै सेवत चौठ इन्दा॥ २॥
चौतीस अतिशय अति शोभता, बहु विस्तार बखाणं॥
पंच तीस प्रकार करीनें तारै जीव अज्ञाणं॥ ३॥
दश आठ दोषण टाला बारै गुणवाला, सुरेन्द्र सूं अति रूपाला।
वाण विशाला समझै वृद्ध बाला, कट जावै कर्म पूराला॥ ४॥
नाम स्थापना द्रव्य निक्षेपो, चौथो भाव पिछाणं॥
भाव भगवन्त ने नित २ नमिये, ते पामें कल्याणं॥ ५॥
नमो कहतां नमस्कार छै, अरि कहतां कर्म कटाणं॥
हंता कहतां हणिया अरिहन्त, ते पाया निरवाणं॥ ६॥
कर करणी कर्मा ने काट्या, पाया सिद्ध निरवाणं॥
जन्म जरा दुःख मेट दिया सर्व, नहीं कोई आवण जावणं॥ ७॥
सिद्धजी आठ गुणा कर शोभै, अतिशय गुण इकतीसा॥
कर्म विदार्‌या कारज सार्‌या, जीता रागनें रीसा॥ ८॥
अवर्ण अगंध अरस अफर्श, नहीं जोग लेश आहारं॥
अनन्त सुख आत्मीक सोहै, सिद्ध सदा सिरदारं॥ ९॥

नमो कहतां नमस्कार छै, सिद्धाणं कारज सार्‌या ॥
सुख शाश्वता सदा काल छै, आवागमण निवार्‌या ॥ १० ॥
छतीस गुणे करी शोभ रह्या छै, आचारज अणगारा ॥
निश दिन चरचा न्याय वतावै, गुण कर ज्ञान भण्डारा ॥ ११ ॥
धर्माचार्य धुरा धुरन्धर मोटा मुनिवर म्हांरा ॥
भरत क्षेत्र में भिक्षु शोभ्या, शिष्य भारीमाल सिरदारा ॥ १२ ॥
गुणरा आगर बुद्धिरा सागर, मोटा मुनि मुनिन्दा ॥
साधां मांही शोभ रह्या छै, जिम तारां विच चन्दा ॥ १३ ॥
अङ्ग इग्यारह उपांग वारह, भणै भणावै सारा ॥
पचीस गुणा कर शोभ रह्या छै, उपाध्याय अणगारा ॥ १४ ॥
जघन्य दोय सहंस कोड़ जाभ्हेरा, उत्कृष्टा नव सहंस कोडं ॥
अढाई द्वीप पनरै क्षेत्रां में, मुनीश्वरां रा जोडं ॥ १५ ॥
वारह आठ छतीस पचीसा, साधु सतावीस गुणवाला ॥
एकसौ ने आठ गुणारी, ए गाथो गुण माला ॥ १६ ॥
दोष बयालीस वहरत टालै, वावन टालै अणाचारा ॥
पांच दोष मंडला रा टालै, गुण कर ज्ञान भण्डारा ॥ १७ ॥
पांच पद परमेश्वर पूरा गुण ओलखे ने गावो ॥
सम्यक सहित व्रत पालने, आवागमण मिटावो ॥ १८ ॥
समत अठारह वर्ष गुण साठे आषाढ़ जाणीज्यो मासं ॥
गुण गाया छै पांच पदां रा, शहर पीसांगण चौमासं ॥ १९ ॥

—:०:*:०:—

पच्चीस बोल ।

जैन धर्म के सिद्धान्तों को जानने के लिये ये सारे बोल प्रवेशिका रूप हैं। इन्हें याद करने और इन्हें समझ कर धारणा कर लेने से सहज में जैन-धर्म के रहस्य हृदयङ्गम किये जा सकते हैं। ज्यामिति की जैसे परिभाषा, स्वतः सिद्ध, स्वीकार्य्य आदि जानना जरूरी है—व्याकरण की जैसे परिभाषा जानना आवश्यक है वैसे ही जैन-धर्म के जिज्ञासु को इन सब बोलों से परिचित होना अत्यावश्यक है। यद्यपि ये सारे बोल जैन धर्म के पाठकवर्ग के लिये प्रवेश द्वार स्वरूप हैं तथापि जैनेतर धर्मवाले भी विचार पूर्वक देखेंगे तो इनमें सनातन विज्ञानसम्मत सत्य की ही झलक पावेंगे।

पहिला बोल

गति ४—नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति व देव गति।

व्याख्या

समस्त सांसारिक जीव इन चारों गतियों में ही पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त एक गति और है वह संसार-मुक्त जीवों की—मोक्ष गति। समुच्चय रूप से जीव पांच गतियों में है और सांसारिक जीव ४ गतियों में। मुक्त जीव याने मोक्ष गति के जीव फिर संसार में नहीं आते क्योंकि उनका कोई कर्म अवशेष नहीं रहा—वे कर्म-रहित होकर मुक्त हो गये हैं। जब तक कर्मक्षय नहीं हुआ तब तक संसार भ्रमण का अंत भी नहीं हुआ।

दूसरा वोल

जाति ५—(१) एकेन्द्रिय (२) वेइन्द्रिय (द्वीन्द्रिय) (३) ते-इन्द्रिय (त्रीन्द्रिय) (४) चौइन्द्रिय (चतुरिन्द्रिय) (५) पंचेन्द्रिय।

व्याख्या

ऊपर में जैसे सांसारिक जीव की ४ गतियां वतलाई वैसे ही सांसारिक जीव एक वा ततोधिक इन्द्रियवाला हो सकता है अतः एक से लगा कर पांच इन्द्रिय तक धारण करनेवाले एकेन्द्रियादि पांच प्रकार ऊपर वतलाये हैं। मोक्ष को प्राप्त हुए जीवों के कोई इन्द्रिय नहीं है, अतः उन्हें "नोइन्द्रिया" कहते हैं।

तीजा वोल

काया ६—(१)पृथ्वीकाय (२) अपूकाय (३) तेउकाय (तेजस्काय) (४) वायुकाय (५) वनस्पतिकाय (६) त्रसकाय।

व्याख्या

साधारणतया सांसारिक जीव त्रस (चलने फिरने वाले) और स्थावर (एक ही जगह स्थिर रहनेवाले) इन दो विभागों में विभक्त हैं। परन्तु स्थावर जीव पृथ्वीकाय अपूकाय तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय ये पांच तो एकेन्द्रिय है और त्रसकाय द्वीन्द्रिय से लगा कर पंचेन्द्रिय तक हैं। मुक्त जीव को "अकाइया" याने काया रहित कहते है।

चौथा बोल

इन्द्रिय पांच—(१) श्रोत्र इन्द्रिय (२) चक्षुः इन्द्रिय (३) घ्राण इन्द्रिय (४) रस इन्द्रिय (५) स्पर्श इन्द्रिय ।

व्याख्या

प्रत्येक सांसारिक जीव के कम से कम एक और अधिक से अधिक पांच ही इन्द्रियां होती हैं। संपूर्ण विकासप्राप्त मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्पादि तथा नारकी और देवताओं में पांचों इन्द्रियां रहती हैं। उनसे नीचे स्तर के जीव में किसी में ४ किसी में ३ और किसी में २ ही इन्द्रियां रहती हैं। इन्द्रियों का जो यह क्रम रखा गया है वह भी विज्ञान-सम्मत है। केवली भगवान ने अपने अपूर्व केवल ज्ञान से समस्त लोकालोक का भाव देख कर यह क्रम बताया है। श्रोत्रेन्द्रिय याने कान सब से अधिक विकसित जीवों में ही मिलेगा। जिनके कान हैं उनके चक्षु, नासिका, जिह्वा और शरीर (त्वक्) जरूर होंगे ही। जैनसिद्धान्त के अनुसार ४ इन्द्रियां मात्र जिन जीव के हैं उनके कान नहीं होते जैसे मक्षिका, मशक, पतंग आदि के। इनके चक्षुः, घ्राण, रस, स्पर्श की इन्द्रियां हैं, पर श्रोत्रेन्द्रिय नहीं है। वैसे ही जिनके सिर्फ ३ इन्द्रियां याने घ्राण, रस स्पर्श हैं उनके चक्षुः व श्रोत्र नहीं है जैसे पिपीलिका आदि के। और जिनके दो ही इन्द्रियाँ रस और स्पर्श हैं उनके बाकी तीन इन्द्रियां नहीं होतीं। जैसे कृमि आदि के। यह जो क्रम श्रोत्र, चक्षुः घ्राण, रस, स्पर्श का रखा है वह क्रमशः नीचे स्तर के

जीवों में कमता जाता है। इस क्रम के अनुसार यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि सिर्फ श्रोत्र व स्पर्श इन्द्रिय युक्त प्राणी हो नहीं सकता। अथवा चक्षुः और स्पर्श इन्द्रिय वाला। अथवा श्रोत्र व चक्षुः मात्र वाला। एकेन्द्रिय जीव के सिर्फ स्पर्श इन्द्रिय याने शरीर मात्र होगा। वह तो जीव की सब से निम्नतम विकासा-वस्था है। मृत्तिका प्रस्तर, स्वर्ण, रौप्य, रत्न, नमक आदि पृथ्वी काय में सिर्फ शरीर है। उनके केवल मात्र स्पर्शेन्द्रिय है। उनके न तो जिह्वा है, न नाक, न आंख और न कान; वैसे ही जल, शिशिर, हिम आदि जलमय जीव के भी केवल तत्तत् शरीर ही है। और कोई इन्द्रियां नहीं। तेउकाय—अग्निस्फुलिंग आदि तेजो-कायक जीव के एक मात्र तेजस्काय-स्पर्शेन्द्रिय मात्र है। वायु—हर तरह की जो पवन है उसमें भी स्पर्शेन्द्रिय मात्र है, दूसरी कोई इन्द्रिय नहीं। वृक्ष, लता, पत्र, फल-फूल आदि सब वनस्पतिकाय के जीव में भी एक मात्र स्पर्शेन्द्रिय ही है। इन पांचों स्थावर जीवों में एक मात्र स्पर्शेन्द्रिय ही है। त्रस जीव में यथाक्रम २।३।४।५ इन्द्रियां हो सकती हैं।

पांचवां बोल

पर्य्याय ६—(१) आहार पर्य्याय (२) शरीर पर्य्याय (३) इन्द्रिय पर्य्याय (४) श्वासोश्वास पर्य्याय (५) भाषा पर्य्याय (६) मन पर्य्याय।

व्याख्या

सांसारिक जीव के क्रमविकास के स्तर में यह पर्य्याय कम से कम ३।। और अधिक से अधिक ६ तक होता है। संपूर्ण विकसित पंचेन्द्रिय मनुष्य व पशुपक्षी आदि के ६ पर्य्याय होते हैं। संमुछिम असन्नी मनुष्य में केवल मात्र ३।। पर्य्याय होते हैं क्योंकि उनकी आयु इतनी अल्प है कि वे जन्मे बाद श्वास लेते हैं तो उश्वास लेने के पहले ही मर जाते हैं। ४८ मिनिट (एक मुहूर्त) में ऐसे जीव ६५५३६ भव तक कर लेते हैं याने वे जन्मते हैं और मरते हैं, फिर जन्मते और फिर मरते जाते हैं। जीव जब एक जगह मरके दूसरी जगह जन्मता है तब पहिले आहार ग्रहण करता है। यह जो सर्व प्रथम उत्पत्ति की पूर्वकालीन-आहार-ग्रहण शक्ति है वही आहार पर्य्याय है। आहार ग्रहण किये बाद उस आहार के कारण उनके शरीर की रचना होती है याने आकृति अथवा अवयव होता है। उसे शरीर पर्य्याय कहते हैं। शरीर के बाद इन्द्रियां बनती हैं, उसे इन्द्रिय पर्य्याय कहते हैं। इन्द्रियां बने बाद उसमें श्वासोश्वास की क्रिया होती है। यह श्वासोश्वास पर्याय है। श्वासोश्वास के बाद वह बोलने लगता है यह उसका भाषा पर्य्याय है और अंत में उसके "मन" होता है याने चिंतन शक्ति आती है, यह मन पर्याय है।

छट्ठा बोल

प्राण १०—(१) श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण (२) चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण (३) घ्राणेन्द्रिय बल प्राण (४) रसेन्द्रिय बल प्राण (५) स्पर्शेन्द्रिय बल

प्राण (६) मनबल प्राण (७) वचन बल प्राण (८) काया बल प्राण (९) श्वासोश्वास बल प्राण (१०) आयुष्य बल प्राण ।

व्याख्या

प्रत्येक सांसारिक जीव के कम से कम ४ प्राण तो होते ही हैं। यह केवल स्थावर जीवों के लिये है। एकेन्द्रिय स्थावर के (१) स्पर्शेन्द्रिय बल प्राण (२) काया बल प्राण (३) श्वासोश्वास बल प्राण (४) आयुष्यबल प्राण यह ४ प्राण ही हैं। नारकी देवता गर्भज मनुष्य व तिर्यञ्च में १० प्राण ही रहते हैं। द्वीन्द्रिय में एकेन्द्रिय के ४ प्राण के अलावे रसेन्द्रियबल प्राण व वचनबल प्राण बढ़ के कुल ६ प्राण हुए। त्रीन्द्रिय में ७ प्राण-घ्राणेन्द्रियबल प्राण और बढ़ के कुल ७ प्राण हुए। चतुरिन्द्रिय में चक्षुरिन्द्रियबल प्राण बढ़ के कुल ८ प्राण हुये। यह प्राण का भेद जीवनी-शक्ति का भेद है। चैतन्यमय जीव के जिस-जिस प्रकार की जीवनी-शक्ति का विकास वा तारतम्य है उसी मुजब प्राण भी कम-वेशी है। इसीलिये एकेन्द्रिय स्थावरों में स्पर्शेन्द्रिय, काया श्वासोश्वास और आयुष्य छोड़ और कोई प्राण व जीवनी शक्ति नहीं है। कम से कम ४ प्राण हो सकते हैं। इससे कम प्राण किसी भी जीव में संभव है नहीं। सिर्फ यह बात ध्यान में रखने लायक है कि त्रयोदश गुणस्थानवर्त्ती सयोगी केवली अवस्था में केवल (१) मनबल प्राण (२) वचनबल प्राण (३) कायाबल प्राण (४) श्वासोश्वासबल प्राण और (५) आयुष्यबल प्राण यह ५ प्राण हैं। और चतुर्दश गुण स्थानवर्ती अयोगी केवली अवस्था में सिर्फ आयुष्यबल प्राण ही है। क्योंकि इस अवस्था के बाद ही मुक्ति

पधार जाते हैं। यह सब गहन बातें ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे मालूम होंगी, यहां तो एक दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

सातवां बोल

शरीर ५—(१) औदारिक (२) वैक्रिय (३) आहारक (४) तैजस (५) कार्मण।

व्याख्या

सांसारिक जीव मात्र के शरीर होता ही है। मुक्त जीव याने सिद्धों के शरीर नहीं होता वे अशरीरी हैं।

साधारण मनुष्य पशु-पक्षी आदि के दृश्यमान शरीर को औदारिक कहते हैं।

नारकी व देवता का शरीर इच्छानुरूप हो सकता है, एक ही प्रकार का शरीर दृश्यमान नहीं रहता। वे जब चाहें तब अपने शरीर को रूपान्तरित कर सकते हैं और वह शरीर मनुष्य के न्याय हाड़मांस चर्म का नहीं होता उनके शरीर को वैक्रिय शरीर कहा जाता हैं।

आहारक शरीर तो केवल परमर्द्धिक लब्धिधारी मुनिराज अपने शरीर से—अपने लब्धि बल से बना कर किसी इप्सित प्रश्न का उत्तर लेने वास्ते भगवान् के पास भेजते हैं। यह एक प्रकार का शक्ति विशेष द्वारा कृत छोटा मनुष्याकार जीव होता है जो फिर इप्सित प्रश्न का उत्तर लाये बाद मूल शरीर में सम्मिलित हो जाता है। मनुष्य छोड़ कर दूसरा कोई आहारक शरीर नहीं बना सकता और मनुष्य शरीर से उद्भूत यह शरीर फिर उसी में आकर मिल जाता है इसलिये आहारक शरीर केवल मनुष्य में ही होता है ऐसा कहा जाता है। तैजस और

कार्मण शरीर प्रत्येक संसारी जीव के होता ही है। तैजस शरीर प्रत्येक संसारी जीव के भीतर जो तेजः याने पाचन शक्ति, गरमाई रहती इसका नाम है और कर्म जबतक शरीर के साथ संबंधित है तबतक उसमें कार्मण शरीर है। जब कर्ममुक्त सिद्ध हो जाते हैं तब उसके कोई भी शरीर की जरूरत नहीं और न कोई शरीर-बंधन का कारण ही मौजूद रहता है।

आठवां बोल

योग १५—मन के ४—(१) सत्य मन योग (२) असत्य मन योग (३) मिश्र मन योग (४) व्यवहार मन मोग।

वचन के ४—(१) सत्य भापा (२) असत्य भापा (३) मिश्र भापा (४) व्यवहार भापा।

काया का ७—(१) औदारिक (२) औदारिक मिश्र (३) वैक्रिय (४) वैक्रिय मिश्र (५) आहारक (६) आहारक मिश्र (७) कार्मण योग।

व्याख्या

संसार में समस्त कार्य करते समय मन, वचन या काया का सहारा लिया जाता है। इनमें एक दो या तीनों के सहारे से समस्त कार्य संपादित होता है। मन वचन व काया के साहाय्य को "योग" बतलाया गया है। इनका फिर प्रभेद ४।४।७ है सो ऊपर कहा जा चुका है। इनका विस्तृत ज्ञान क्रमशः अधिक अध्ययन व मनन से ही होगा।

नवमां बोल

उपयोग १२। ज्ञान का ५—(१) मति ज्ञान (२) श्रुति ज्ञान (३) अवधि ज्ञान (४) मनपर्यव ज्ञान (५) केवल ज्ञान।

अज्ञान ३ —(१) मति अज्ञान (२) श्रुति अज्ञान (३) विभंग अज्ञान।

दर्शण ४—(१) चक्षुदर्शण (२) अचक्षु दर्शण (३) अवधि दर्शण (४) केवल दर्शण।

व्याख्या

ऊपर योग के विषय में कहा जा चुका है कि प्रत्येक कार्य्य करने में एक वा ततोधिक योग की जरूरत रहती है। और साथ २ तद्विषयक विचारना, चिंतन या मनन के लिये ज्ञान व दर्शण की जरूरत होती है। ज्ञान व दर्शण के विभिन्न भेदों को लेकर १५ भाग किये गये हैं। सम्यक्ती याने शुद्ध श्रद्धावाले का जो ज्ञान है उसे ज्ञान कहते हैं और मिथ्यात्वी याने अशुद्ध श्रद्धावाले का जो जानना है उसको जैनशास्त्र में अज्ञान ही कहा है। ज्ञान व दर्शण में यह भेद है कि दर्शण से वस्तु का सामान्य परिचय होता है और ज्ञान के सहारे उसका विशेष हाल मालूम होता है। ज्ञान के जो पांच भेद हैं उनमें मतिज्ञान अपनी (स्वमति)—बुद्धि के सहारे जो जानना वह मतिज्ञान, शास्त्रों से या गुरुउपदेश से जो जानना वह श्रुति ज्ञान। अवधि ज्ञान एक विशिष्ट ज्ञान है जो नारकी देवताओं में तो होता ही है, मनुष्य में भी किसी-किसी में होता है जो उच्च दरज पर पहुंच गये हों। कोई-कोई गर्भज तीर्यंच में भी अवधि ज्ञान का होना

संभव है मनः पर्यव ज्ञान से दूसरों के मन की बात तक जानी जाती है—और मनः पर्यव ज्ञान तो केवल मात्र मनुष्य गति में उन्हीं पुण्यात्मा महात्माओं में होता है जो अपनी साधना व तपस्या से बहुत ही ऊँचे श्रेणी में पहुंच गये हों। अवधि-ज्ञान से बहुत दूर के, बहुत काल के पदार्थादि स्वर्ग नरक के द्रव्यादि तक जाने जाते हैं। केवल ज्ञान तो सिद्धिगामी मनुष्य को ही होता है। केवल ज्ञान से तो भूत, भविष्यत्, वर्तमान के समस्त विषय और तीनों ही लोकों का हाल जाना जाता है।

तीन अज्ञान क्रमशः ठीक पहले ३ ज्ञान के माफिक ही हैं सिर्फ वह मिथ्यात्वी होने के सबब उनका जानना अज्ञान पर्य्याय में ही रखा गया है।

दर्शण चार प्रकार के हैं—उनमें जो चक्षु से देखा जाता है वह चक्षु दर्शण। चक्षु छोड़ अन्येन्द्रिय से जो वस्तु विवेक होता है वह अचक्षु दर्शण, अवधि दर्शण से दूर दूरान्तर की—हजारों लाखों योजन की वस्तु दिखाई पड़ती है। केवल दर्शण से समस्त काल की, समस्त जगत की वस्तु नजर में आती है।

दशवां बोल

कर्म ८—(१) ज्ञानावरणीय (२) दर्शणावरणीय (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयुः (६) नाम (७) गोत्र (८) अन्तराय।

व्याख्या

संसारी जीव कर्मों के कारण ही नाना गतियों में परिभ्रमण कर जन्म मृत्यु प्राप्त करते हैं। जैन शास्त्रों में कर्मों को ८ प्रकार का बतलाया है। उनकी विभिन्न प्रकृति स्थिति आदि का परिचय अधिक पठन से क्रमशः मिलेगा।

ज्ञानावरणीय कर्म से जीव को ज्ञान नहीं उपजता।

दर्शनावरणीय कर्म से वस्तु का विवेक नहीं होता।

वेदनीय कर्म से सुखदुःख का अनुभव होता है।

मोहनीय कर्म से जीव सांसारिक जीवाजीव पर मोहित व आसक्त होकर संसार परिभ्रमण करे और सत्य श्रद्धा न हो।

आयुष्य कर्म से जीव का आयुष्य बंधन होता है। आयुः कर्मक्षय न होने से जीव संसार से छूट नहीं सकता।

नाम कर्म से जीव नाना प्रकार गति, जाति शरीर आदि प्राप्त करता है।

गोत्र कर्म से ऊँचनीच गोत्र पाता है।

अन्तराय कर्म से भली वस्तु की प्राप्ति नहीं होती, दान नहीं दे सकता, भोग-उपभोग नहीं कर सकता, बलवीर्य्य नहीं होता।

ये सारे कर्म कैसे बंधते हैं इसका संक्षेप दिग्दर्शन कराया जाता है:—

ज्ञान तथा ज्ञानवन्त के अविनीत होने से, उनकी निंदा करने से, अवज्ञा करने से, गोपन करने से, उनसे अन्तराय देने से, उनसे द्वेप करने से, उनकी अवहेलना करने से ज्ञानावरणीय कर्म बन्धता है। इसलिये सबको चाहिये कि ज्ञान व ज्ञानी के प्रति विनीत हो, उनकी

प्रशंसा करे, उनको बहु मान देवे. लोगों को उनसे परिचित करावे।

ज्ञान की तरह दर्शन तथा दर्शनवन्त के विपरीताचरण करने से हेलना, निंदना, गोपन करने से, अन्तराय देने से अवज्ञा करने से दर्शनावरणीय कर्म बन्धता है। इसलिये किसी को ऐसा न करना चाहिए।

वेदनीय कर्म—परजीवों को दुःख देने से, शोक उपजाने से रोवाने से, प्रहार करने से, अनुकम्पन करने से, अशाता वेदनीय कर्म उपार्जन होता है जिससे जीव दुःख पाता है। इसके विपरीत जीव की अनुकंपा करने से अर्थात् जीव को दुख न देने से, शोकग्रस्त न करने से, न झुराने से, न रुलाने से, न पीटने से, न मारने से, सातावेदनीय कर्म उपार्जन होता है जिससे जीव सुख पाता है।

मोहनीय कर्म—तीव्र क्रोध से, तीव्र मान से, तीव्र माया से, तीव्र लोभ से, हास्य से, असंयम से अनुराग से, संयम से विराग से, भय से, शोक से, घृणा से, स्त्री पुरुष नपुंसक पर अभिलाष वा आसक्ति से इत्यादि ऐसे नाना कारणों से मोहनीय कर्म उपार्जन होता है। इस कर्म की स्थिति सब कर्मों से अधिक बतलाई है। अतः क्रोध, मान, माया, लोभादि समस्त उपरोक्त दुर्गुण छोड़ने चाहिए।

आयुष्य कर्म के ४ भेद हैं—नरकायुः, तीर्यञ्चायुः, मनुष्यायुः, देवायुः। महा—आरंभादि से, महापरिग्रह (धनधन्यादि का संग्रह व उस पर मूर्छा से), पंचेन्द्रिय जीव का वध व मांसाहार से नरकायुः का बंध होता है इसलिये ये सब कार्य बिलकुल न करने चाहिए। कपटाचार, कपटाचार छिपाने के लिये गूढ कपट,

मिथ्या बोलने व झूठा तोलने, झूठा मापने से—तीर्यञ्चायुः बंधता है जिन्हें द्वीन्द्रिय से लेकर पशु पक्षी आदि तीर्यञ्च गति में नहीं उपजना हो उन्हें कदापि कपटता व मिथ्या का आश्रय न लेना चाहिए।

मनुष्यायुः ४ प्रकार से उपार्जन होता है—स्वभाव का विनीत, स्वभाव से सरल, दयावान्, और अमत्सर भाव याने दूसरों का गुण सहन कर सकने से मनुष्यायुः बंध होता है। जब कि मनुष्य भव समस्त गतियों में श्रेष्ठ है, जब कि मनुष्य भव छोड़ कर दूसरे गतियों में धर्म करने की सहूलियत नहीं है, जब कि मनुष्य गति से ही मुक्ति मिलती है तब मनुष्यायुः बंध का ४ मुख्य उपाय हर एक आत्म-हितेच्छु व्यक्ति को ग्रहण करना चाहिये अर्थात् सरल, विनीत, दयालु, व गुणग्राहक होना चाहिए। लोकोत्तर अर्थात् मोक्ष साधन के ये ही सब उपाय हैं और संसार में भी इन उपायों से उन्नति अनिवार्य है।

देवायुः ४ प्रकार से बंधती है—सराग संयम पालने से, श्रावक-पणा से, अज्ञान तपस्या से, अकाम निर्जरा से।

नाम कर्म के दो भेद—शुभ नाम और अशुभ नाम। शुभ नाम कर्म ४ प्रकार से बंधता है—(१) काया से सरल अर्थात् शरीर से किसी को ठगे नहीं (२) भाव सरल (३) भाषा सरल (४) अविस-मवाद योग (जैसा करे वैसा ही बोले।)

अशुभ नाम कर्म ४ प्रकार से बंधता है—काया से दूसरे को ठगे,

भाव के असरल (कुटिल) भाषा के असरल, विषमवाद योग करे (करना व कहना दोनों पृथक्)।

शुभनाम कम से सांसारिक सब अच्छा संयोग मिलता है अतः किसी को अशुभ नाम कर्म बंधन करनेवाले आचरण नहीं करने चाहिए।

गोत्र कर्म के दो भेद—उच्च गोत्र और नीच गोत्र। उच्च गोत्र कर्म ८ प्रकार से बंधता है—१ जाति २ कुल ३ बल, ४ रूप ५ तपस्या, ६ सूत्र, ७ लाभ ८ प्रभुता इन सबका मद, अहंकार, गर्व न करने से और इसके विपरीत इन सब चीजों को पाकर उसका मद, अहंकार गर्व करने से नीच गोत्र कर्म बंधता है। जिन्हें उच्च गोत्र से प्रेम है उन्हें कदापि अपनी जाति, कुल, बल, प्रभुता आदि का अहंकार न करना चाहिये।

अन्तराय कर्म—दान, लाभ, भोग, उपभोग व शक्ति की अंतराय देने से जीव इन सब को प्राप्त नहीं होता, अतः, किसी को दान देते, भोग भोगते, शक्ति का उपयोग करते, लाभ होते देख किसी प्रकार की बाधा नहीं देनी चाहिये।

कर्मों का संक्षेपतः परिचय, उनके बंध का कारण आदि बतलाया सो गौर से ध्यान देने लायक है। सिर्फ कर्मों का नाम जानने से कुछ गरज न सरेगी। उनको पहिचान कर उनके भीतर जो त्यागने लायक है, और जिन-जिन कृत्यों से वे बंधते हैं वह सब सदा मन में रख कर संसार में अग्रसर होना चाहिए ताकि इहलोक की उन्नति के साथ २ पारत्रिक कल्याण का मार्ग सहज व

सरल हो जाय। कर्मों का स्वरूप जान कर यथा संभव उससे बचने की कोशिस करें।

ग्यारहवां बोल

गुणस्थान १४—(१) मिथ्यात्वी (२) सास्वादन समदृष्टि (३) मिश्र (४) अव्रती समदृष्टि (५) देशव्रती श्रावक (६) प्रमादी साधु (७) अप्रमादी साधु (८) निवृत्त बादर (९) अनिवृत्त बादर (१०) सूक्ष्म संपराय (११) उपशान्त मोह (१२) क्षीण मोह (१३) सयोगी केवली (१४) अयोगी केवली।

व्याख्या

गुणस्थान जीव के क्रमविकास का स्तर है। सर्व निम्न अवस्था मिथ्यात्वी गुणस्थान का है। मिथ्यात्वी को भी पहिले गुणस्थान में इसलिये रखा है कि यद्यपि वह मिथ्यात्वी है तथापि कोई कोई बात उनमें भी सच्ची श्रद्धा की मिल सकती है। दूसरा गुणस्थान अतिशय सामान्यकाल स्थायी है, समदृष्टि जीव जब कर्म वश निम्न-स्तर में याने मिथ्यात्व में आ पहुंचता है तब पहला स्थान छोड़ा और दूसरा स्थान में गिरा इसके बीच का सामान्य काल सास्वादन सम-दृष्टि कहलाता है क्योंकि उसमें समदृष्टि का आस्वाद मात्र है। तीसरा मिश्र उस अवस्था का नाम है जिसमें कुछ अंश समदृष्टि का और कुछ मिथ्यात्व का हो। चौथा गुणस्थान समदृष्टि जीव जो कोई व्रत प्रत्याख्यानादि अंगीकार न किया हो, उनका है। पांचवा गुणस्थान समदृष्टि व्रतधारी श्रावक का है। छठे से लगाय चौदहवें तक गुण-स्थान साधुओं का है। ज्यों-ज्यों साधुपणा में कषाय (क्रोध, मान, माया.

लोभ) का हलकापन होता जाता है त्यों-त्यों साधुओं के गुणस्थान की श्रेणी उच्च होती जाती है। चवदहवें गुणस्थानक में पहुंचने के अव्यवहित बाद ही मुक्ति पधार जाते हैं।

बारहवां बोल

पांच इन्द्रिय का २३ विषयः—श्रोत्रेन्द्रिय का ३—जीवशब्द, अजीवशब्द व मिश्र शब्द

चक्षुः इन्द्रिय का ५—काला, पीला, धोला, लाल, व नीला।

घ्राणेन्द्रिय का २—सुगंध व दुर्गन्ध।

रसेन्द्रिय का ५—खट्टा, मीठा, कड़वा, कसायला व तीखा।

स्पर्शेन्द्रिय का ८—हलका, भारी, खरदरा (कर्कश), सुहाला (मसृण), लूखा (रुक्ष), चोपड्या, ठंडा, उष्ण।

व्याख्या

यह सारा विषय सहज में बोधगम्य है। श्रोत्रेन्द्रिय का जो जीव शब्द बतलाया वह जीव कृत शब्द अजीव शब्द—अजीव पदार्थ प्रस्तर, मिट्टी, लकड़ी इत्यादि का पतन घर्षण आदि जनित शब्द और मिश्र शब्द जीवकृत अजीव पर शब्द यथा ढक्का निनाद बंशीस्वर इत्यादि।

चक्षुः इन्द्रिय का विषय में—पांच प्रकार का वर्ण कहा गया है। आधुनिक वैज्ञानिक लोग ७ रंग बतलाते हैं और सफेद व काले को यथाक्रम रंगों का समवाय व अभाव बतलाते हैं। परन्तु जैनागमों में श्वेत व कृष्ण भी वर्ण बतलाया है। अन्यथा कृष्ण

वर्ण मसी आदि में कोई रंग नहीं, ऐसा कहना अयौक्तिक होगा। जैनागम में एक एक वर्ण में भी दूसरे दूसरे रंग का न्यूनाधिक भाव से होना बतलाया है और एक एक रंग भी अत्यन्त कमवेशी हो सकता है। ये सब गहन बातें अधिक अध्ययन, मनन,श्रवण से मालूम होंगी। घ्राणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय का विषय सहज बोध्य व सब का जाना हुआ है।

तेरहवां बोल

दश प्रकार के मिथ्यात्वी हैं—

(१) जीव को अजीव श्रद्धे सो मिथ्यात्वी।
(२) अजीव को जीव समझे सो मिथ्यात्वी।
(३) धर्म को अधर्म श्रद्धे सो मिथ्यात्वी।
(४) अधर्म को धर्म श्रद्धे सो मिथ्यात्वी।
(५) साधु को असाधु श्रद्धे सो मिथ्यात्वी।
(६) असाधु को साधु श्रद्धे सो मिथ्यात्वी।
(७) धर्म मार्ग को कुमार्ग श्रद्धे सो मिथ्यात्वी।
(८) कुमार्ग को धर्म मार्ग श्रद्धे सो मिथ्यात्वी।
(९) मोक्ष गये को अमोक्ष गया श्रद्धे सो मिथ्यात्वी।
(१०) अमोक्ष गये को (जो मोक्ष नहीं गये) मोक्ष गया श्रद्धे सो मिथ्यात्वी।

व्याख्या

सम्यक्ती व मिथ्यात्वी का जिक्र बहुत जगह पहिले आया है पर मिथ्यात्वी की पहिचान तेरहवें बोल में ही यहां दी गई है। यह

पहचान खासकर जानने योग्य व स्मरण रखने योग्य है। क्योंकि इन्हें न जानने से सम्यक्त खो देने की आशंका रहती है। प्रत्येक जैन को इन सब मिथ्यात्व का लक्षण विचारपूर्वक समझ के इनसे बचना चाहिए। उदाहरणस्वरूप बहुत से मतों में पशु-बलिदान धर्म बतलाया है। यह बिलकुल धर्म नहीं। प्रथम तो हिंसा में धर्म नहीं होता, दूसरे, दूसरे की हिसा करना और उसे धर्म समझना यह मिथ्यात्त्व की जड़ है, फिर देखो बहुत लोग एकेन्द्रिय पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति काय में जीव नहीं मानते। अगर हम उन्हें जीव नहीं मानते हैं तो उससे मिथ्यात्व लगता है इसी तरह दूसरे-दूसरे मिथ्यात्वी का लक्षण हरदम याद रखो और यथासंभव उससे अपने को बचाओ।

चौदहवां बोल

१४ चौदहवें बोले नव तत्व को जाणपणो तींका ११५ एक सौ पन्दरा बोल। चौदै जीव काः—सूक्ष्म एकेन्द्री का दोय भेद—१ पहलो अपर्याप्तो २ दूसरो पर्याप्तो। बादर एकेन्द्री का दोय भेद—३ तीजो अपर्याप्तो ४ चौथो पर्याप्तो। बे इन्द्री का दोय भेद—५ पांचमूं अपर्याप्तो ६ छट्ठो पर्याप्तो। ते इन्द्री का दोय भेद—७ सातमूं अपर्याप्तो ८ आठमूं पर्याप्तो। चौ इन्द्री का दोय भेद—९ नवमूं अपर्याप्तो १० दशमूं पर्याप्तो। असन्नी पंचेन्द्री का दोय भेद—११ इग्यारमूं अपर्याप्तो १२ बारमूं पर्याप्तो, सन्नी पंचेन्द्री का दोय भेद—१३ तेरमूं अपर्याप्तो १४ चौदमूं पर्याप्तो। १४ चौदे अजीव का भेद—धर्मास्तिकाय का ३ भेद—खन्ध

देश, प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का ३ भेद—खन्ध, देश, प्रदेश, आकाशास्तिकाय का ३ भेद—खन्ध, देश, प्रदेश, काल को दशमूं भेद (ये दश भेद अरूपी छै) पुद्गलास्तिकाय का च्यार भेद—खन्ध देश, प्रदेश, परमाणु । ६ पुन्य नव प्रकार का अन्नपुन्ने १ पाणपुन्ने २ लैणपुन्ने ३ सयण पुन्ने ४ वत्थपुन्ने ५ मनपुन्ने ६ वचनपुन्ने ७ कायापुन्ने ८ नमस्कार पुन्ने ६ ।

पाप अठारे प्रकार—प्राणातिपात १, मृषावाद २, अदत्तादान ३, मैथुन ४, परिग्रह ५, क्रोध ६, मान ७, माया ८, लोभ ६, राग १०, द्वेष ११, कलह १२, अभ्याख्यान १३, पैशुन्य १४, परपरिवाद १५. रति अरति १६, मायामृषा १७, मिथ्यादर्शन शल्य १८ ।

२० वीस आस्रव का—मिथ्यात्व आस्रव १, अव्रत आस्रव २, प्रमाद आस्रव ३, कषाय आस्रव ४, जोग आस्रव ५, प्राणातिपात आस्रव ६, मृषावाद आस्रव ७, अदत्तादान आस्रव ८, मैथुन आस्रव ६, परिग्रह आस्रव १०, श्रोत्रइन्द्री मोकली मेले ते आस्रव ११, चक्षु इन्द्री मोकली मेले ते आस्रव १२, घ्राणइन्द्री मोकली मेले ते आस्रव १३, रसइन्द्री मोकली मेले ते आस्रव १४, स्पर्शइन्द्री मोकली मेले ते आस्रव १५, मन प्रवर्तावै ते आस्रव १६, वचनप्रवर्तावै ते आस्रव १७, काया प्रवर्तावै ते आस्रव १८, भण्डोपकरणमेलतां अजयणा करै ते आस्रव १६, सुई कुसाग्रमात्र सेवै ते आस्रव २० ।

२० वीस संवर का—सम्यक्त ते संवर १, व्रत ते संवर २, अप्रमाद ते संवर ३, अकपाय संवर ४, अजोग संवर ५, प्राणातिपात न करे ते संवर ६, मृषावाद न बोले ते संवर ७, चोरी न करे ते संवर ८, मैथुन

न सेवै ते संबर ९, परिग्रह न राखे ते संबर १०, श्रुतइन्द्री वश करे ते संबर ११, चक्षुइन्द्री वश करे ते संवर १२, घ्राणइन्द्री वश करे ते संवर १३, रसेन्द्री वश करे ते संबर १४, स्पर्शइन्द्री वश करे ते संवर १५, मन वश करे ते संवर १६, बचन वश करे ते संवर १७, काया वश करे ते संवर १८, भण्डउवगरणमेलतां अजयणा न करे ते संवर १९, सुई कुसाग्र न सेवै ते संबर २० ।

१२ निर्जरा बारे प्रकारे—अणसण १, उणोदरी २, भिक्षाचरी ३, रस परित्याग ४, कायाक्लेश ५, प्रतिसंलेपना ६, प्रायश्चित ७, विनय ८, वेयावच्च ९, सिज्झाय १०, ध्यान ११, विउसग्ग १२ ।

४ वंध च्यार प्रकारे—प्रकृतिवंध १, स्थितिबंध २, अनुभागवंध ३, प्रदेशवंध ४ ।

४ मोक्ष च्यार प्रकारे—ज्ञान १, दर्शन २, चारित्र ३, तप ४ ।

व्याख्या

एकेन्द्रिय जो चर्मचक्षुः से देख नहीं पाते वे सूक्ष्म और जो देख पाते वे वादर कहलाते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीव जब अपना पूरा पर्याय पा जाते हैं तब उन्हें पर्याप्त कहा जाता है और जब तक पूरा पर्याय नहीं होता और संपूर्ण पर्याय प्राप्त होने के पहिले जीव मर जाता है, उन्हें अपर्याप्त कहा जाता है।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय के खंध (स्कन्ध), देश व प्रदेश ये तीन-तीन भेद है। स्कन्ध समूची वस्तु के लिये प्रयुज्य है। उसके किसी हिस्से, अंश, या टुकड़े

को देश कह सकते हैं और प्रदेश सबसे छोटे अंश को कहते हैं। यह तो अरूपी इन तीनों का भेद है जो पुद्गल की अपेक्षा से यह भेद किया जाता है। अर्थात् किसी रूपी पदार्थ (पुद्गल) को चलने का साहाय्य देने वाला धर्मास्तिकाय है, अतः उस रूपी पदार्थ के समस्त अंश की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय का स्कन्ध है। रूपी के कोई एक हिस्से की अपेक्षा देश व छोटे-छोटे हिस्से को प्रदेश कहते हैं, परन्तु पुद्गल के ४ भेद हैं क्योंकि उसका सर्व छोटा अंश परमाणु है। अरूपी के परमाणु होता नहीं, इसलिये पूर्वोक्त धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाशास्ति के ३ ही भेद हैं। इसका विस्तृत विवरण विशिष्ट विद्वान् अथवा मुनिराजों से जानना चाहिये।

पुन्य के जो ९ भेद किये हैं उसके लिये हरदम यह बात ख्याल रखने को है कि अन्न, पानी, जगह, शय्या, वस्त्रादि निर्दोष साधु मुनिराज आरम्भ समारंभ त्यागी—संसार त्यागी महात्माओं को देने से ही होता है। शुद्ध भाव से, शुद्ध निर्जीव वस्तु, सुपात्र को देना ही पुन्यबंध का कारण है। अशुद्ध भाव से या अशुद्ध वस्तु, या कुपात्र को दिया हुआ कदापि पुण्य का कारण नहीं होता।

वैसे ही मन वचन व काया पुण्य भी। इनको निरवद्य याने पाप रहित कार्य्यों में प्रवर्ताने से ही होता है। सावद्य, पापजनक कार्य्य में प्रवृत्त मन वचन काया से पुण्य नहीं होता। नमस्कार भी हर एक को करने से पुन्य नहीं होता। लौकिक व्यवहार (सांसारिक भद्रता Etiquette) से बहुतों को नमस्कार किया जाता है, परन्तु पुण्य तो उन महात्माओं को या उन देव को नमस्कार से ही होगा जो

सावद्य कार्य्य से निवृत्त हैं अथवा कषायों को जिन्होंने जीता है। हर एक पाठक को ध्यान में रखना होगा कि सांसारिक दान नाना प्रकार के हैं। गृहस्थ से नाना कारणों से अनेकों को बहुत कुछ दिया जाता है परन्तु उससे सांसारिक कीर्ति व यश नाम हो सकता है परन्तु आत्मिक उन्नति व पुन्य का कारण वह सब दान नहीं हैं। जैन धर्म की यह मुख्य बात याद रखने लायक है कि किसी को (चाहे कुपात्र हो या सुपात्र) कोई कुछ देता है तो उसको मना करना अंतराय कर्म बंध का कारण है। परन्तु कौन सा दान वास्तव में आत्मिक कल्याण का है और कौन सा सिर्फ लोक व्यवहार, सांसारिक यशः कीर्ति मान या देखादेखी होता है यह जानना जरूर चाहिये। बुरे को बुरा व भले को भला जाननेवाला कदापि नहीं पिस्तावेगा। पाप का १८ प्रकार बताया सो सहज बोध्य है। प्राणातिपान (हिंसा) से लेकर कलह तक तो सरल है व सब पाठक जानते हैं। अभ्याख्यान का अर्थ फिजूल की झूठी बात बनाना इसे सब बुरा कहते हैं। पैशुन्य याने दूसरे की चुगली करना भी साधारणतया निंदित है। परपरिवाद दूसरों की निंदा करना अनुचित है, यह सब जानते ही हैं। रति—असंयम में राजीपना याने मनमानी उछृंखल भाव में वर्तने में खुशी मानना व अरति—संयम में बेराजीपना अर्थात् व्रत नियमादि के पालन में कष्ट समझना। पंच-इन्द्रिय का विषय भोग में जो स्वतन्त्रता वह असंयम व उसमें जो नियन्त्रण वह संयम। इन दोनों को यथातथ्य समझ के सबको होशियार रहना चाहिए। नीतिकारने कहा भी है—

आपदां कथितः पंथा इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयो संपदां मार्गः येनेष्टं तेन गम्यताम् ॥

माया मृषा—कपट सहित झूठ बोलना। मिथ्या दर्शन शल्य याने मिथ्यात्त्व रूपी कंटक।

आश्रव याने जीव के साथ कर्मों के मिलाप का रास्ता यह २० है यह सब सहज बोध्य है। संवर याने कर्म प्रवेश रोकने का अर्गल – यह भी सहज बोध्य ही है।

निर्जरा अर्थात् कर्म काटने का १२ भेद है—

अनशण—उपवासादि तपस्या कर खाना पीना छोड़ना।

उणोदरी—कम आहार करना।

भिक्षाचरी—जरूरत की चीजें भिक्षा करके लाकर आवश्यक पूर्ति करना।

रसपरित्याग—घृतादि अथवा षट्रस की वस्तुयें छोड़ना।

कायाक्लेश—शारीरिक आतापना, शीत सहन आदि से कष्ट सहना।

प्रतिसंलेषना—इन्द्रिय कषाय योग आदि का नियन्त्रण करना। इनको प्रश्रय न देना।

प्रायश्चित—दोष लगा हो तो दंड प्रायश्चित लेकर शुद्ध होना।

विनय—देवगुरु, धर्म व गुणियों को यथाविधि आदर सम्मान देना।

वैयावच्च—पूज्य स्थानीयों की यथासाध्य सेवा करना।

स्वाध्याय (सज्झाय) धार्मिक विषयों का पाठ चितारना अथवा ज्ञान को याद करते रहना।

ध्यान—एकाग्रचित्त से धार्मिक विषय का ध्यान करना।

विउसग्ग (कायोत्सर्ग)—शरीर की समस्त माया छोड़ निर्विकार चित्त रहना।

वंध का ४ प्रकार है—

प्रकृतिबंध—जैसा कर्म किया, उसके अनुसार जो प्रकृति बंधी उसे प्रकृति बंध।

स्थिति बंध—कर्म जितने काल के लिये बंधा।

अनुभाग बंध—तीव्र मन्द आदि भेद से बंध।

प्रदेश बंध—जीव के जिस प्रदेश के साथ जो कर्म जितना बंधा।

मोक्ष का ४ प्रकार या रास्ता है—

ज्ञान से, दर्शण से चारित्र से और तप से मोक्ष मिल सकता है।

पंदरहवां बोल

पन्दरह में बोले आत्मा आठ—द्रव्य आत्मा १ कषाय आत्मा २, योग आत्मा ३, उपयोग आत्मा ४, ज्ञान आत्मा ५, दर्शण आत्मा ६, चरित्र आत्मा ७, वीर्य आत्मा ८।

व्याख्या

आत्मा का आठ भेद है। द्रव्य आत्मा तो साधारण आत्मा को कहते हैं, यह असंख्यात प्रदेश १ है।

आत्मा में कषाय का (क्रोध, मान, माया, लोभ का) प्राबल्य होने से वह कषाय आत्मा कहलावेगी। यह भाव आत्मा अर्थात् आत्मा का एक भाव मात्र है। आत्मा जब मन वचन काया के शुभ व अशुभ भाव में प्रवर्तती है, तब वह योग आत्मा है, यह आत्मा का भाव मात्र है।

उपयोग आत्मा—जब आत्मा उपयोग देती है, तब उपयोग आत्मा कहलावेगी, यह भी भाव आत्मा है।

ज्ञान आत्मा—जब आत्मा ज्ञान में रमती है, तब वह ज्ञान आत्मा कहलावेगी, यह भी भाव आत्मा है।

दर्शण आत्मा—आत्मा में जब दर्शण गुण का प्रादुर्भाव होता है, तब वह दर्शण आत्मा कही जाती है, यह भी भाव आत्मा है।

चारित्र आत्मा—जब आत्मा शुद्ध चारित्र पालती, कर्म को रोकती, तब वह चारित्र आत्मा कहलावेगी, यह भी भाव आत्मा ही है।

वीर्य आत्मा—आत्मा का बलवीर्य पराक्रम है, सो वीर्य आत्मा, यह भी भाव आत्मा है।

सोलहवां बोल

सोलहवें बोले दण्डक चौवीस—१ सात नारकियां को एक दण्डक, १० दश दण्डक भवनपति का—असुरकुमार १, नागकुमार २, सोवन कुमार ३, विद्युत कुमार ४, अग्नि कुमार ५, दीप कुमार ६, उदधि कुमार ७, दिसा कुमार ८, वायु कुमार ९, स्तनित कुमार १०।

पांच थावर का पञ्च दण्डक—पृथ्वीकाय १, अप्पकाय २, तेउकाय ३, वायुकाय ४, वनस्पतिकाय ५, १ बे इन्द्री को सतरमों, १ ते इन्द्री को अठारमों, १ चौ इन्द्री को उगणीसमों, १ तिर्यञ्च पंचेन्द्री को बीसमों, १ मनुष्य पंचेन्द्री को इकवीसमों, १ वानव्यन्तर देवतां को बावीसमों, १ जोतषी देवतां को तेवीसमों, १ वैमानिक देवतां को चोवीसमों।

व्याख्या

कर्म के कारण जीव जो नाना गति में परिभ्रमण रूप दंड भोगता है उसी को दंडक की संज्ञा दी गई है। याने कर्मवश जीव नाना स्थान में उपजता, उसे दंडक कहते हैं। दंडक २४ हैं, सो अलग-अलग नाम से स्पष्ट है।

सतरहवां बोल

सतरहवें बोले लेश्या छव—कृष्णलेश्या १, नील लेश्या २, कापोत लेश्या ३, तेजो लेश्या ४, पद्म लेश्या ५, शुक्ल लेश्या ६।

व्याख्या

लेश्या—जीव के भले बुरे भाव या परिणाम का नाम है। अत्यन्त मलिन भाववाले कृष्णलेश्या, उससे कुछ कम खराब भाववाले नीललेश्या, उससे कुछ ठीक भाववाले कापोतलेश्या, उससे कुछ अधिक अच्छे भाववाले तेजोलेश्या, इसी तरह क्रमशः अच्छे-अच्छे भाववाले पद्म व शुक्ल लेश्या वाले कहलाते हैं। लेश्या पहिचानने के लिये एक सुन्दर दृष्टान्त बतलाया जाता है जो यहां संक्षेपतः बता

देना रोचक होगा । छः मित्र एक साथ फिरने निकले। घूमते-घूमते पथभ्रष्ट होकर एक जंगल में रड भडने लगे, क्षुधा-तृषा से व्याकुल हो गये। देखते-देखते एक आम का वृक्ष कच्चे पके आमों से भरा हुआ देखा तब एक ने कहा, गाछ को काट डालो, सो गाछ गिरने से जो सब आम है सो हम लोग मजे से खा सकेंगे। दूसरे ने कहा, समूचा गाछ क्यों तोड़ना है। एक बड़ी शाखा तोड़ो, उसके आम ही अपने लिये पर्याप्त हैं। तीसरे ने कहा, बड़ी शाखा न तोड़कर एक छोटी शाखा ही तोड़ो तो यथेष्ट होगा, चौथे ने कहा, गाछ या शाखा तोड़ के क्या होगा, सब आम ही तोड़ डालो। पांचवें ने कहा कि इसमें कच्चे पके आम हैं सो पके आम ही तोड़ने चाहिये उससे अपनी क्षुधा-तृषा शान्त हो जायगी। छट्ठे ने कहा कि भाई अनर्थक पेड़ के आम क्यों तोड़ते हो, जो आम पक कर नीचे गिरे हुए हैं, वही हमारे छः के लिये यथेष्ट हैं।

इस कथा में छः मित्रों के भाव में कितना पार्थक्य था। यह छः क्रमशः छः लेश्या के धारक दृष्टान्तस्वरूप कहे जाते हैं।

अठारहवां बोल

अठारमें बोले दृष्टि तीन—सम्यक्दृष्टि १, मिथ्या दृष्टि २, समिथ्या दृष्टि ३।

व्याख्या

दृष्टि ३ प्रकार की—सम्यक्ती—सम्यक्ती वह जो अरिहंत को देव, सुसाधु को गुरु व जिन प्ररूपित तत्व को धर्म समझे।

मिथ्यात्वी वह जो कुगुरु, कुदेव व कुधर्म को सद्गुरु, सच्चा देव व सच्चा धर्म समझे, समिथ्या दृष्टि—वह जो सम्यक्ती है पर किसी-किसी तत्व की बात में मामूली शङ्का है।

उन्नीसवां बोल

उगणीसमें बोले ध्यान ४ च्यार—आर्तध्यान १, रौद्रध्यान २, धर्मध्यान ३, शुक्लध्यान ४।

व्याख्या

ध्यान ४ प्रकार का—

आर्तध्यान—चिंता शोक भयग्रस्त रहना।

रौद्रध्यान—क्रोध के आवेश में रहना।

धर्मध्यान—धर्म चिंतन करना।

शुक्लध्यान—समस्त सांसारिक काय्य को छोड़ एक मात्र आत्मचिंतन, परमार्थ चिंतन में एकाग्र मन से लगा रहना।

बीसवां बोल

बीसमें बोले षटद्रव्य को जाण पणो। धर्मास्तिकाय ने पांचां बोला ओलखीजे—द्रव्यथकी एक द्रव्य, खेत्र थी लोक प्रमाणे, कालथकी आदि अन्त रहित, भाव थी अरूपी, गुणथकी जीव पुद्गल ने हालवा चालवा को सहाय, अधर्मास्तिकाय ने पांचां बोलां ओलखीजे—द्रव्य थी एक द्रव्य, खेत्र थी लोक प्रमाणे कालथकी आदि अन्त रहित, भाव थीं अरूपी, गुण थी थिर रहवा नो सहाय, आका-

शास्तिकाय ने पांच बोल करी ओलखीजे—द्रव्य थी एक द्रव्य, खेत्र थी लोक अलोक प्रमाणे, काल थी आदि अन्त रहित, भाव थी अरूपी, गुण थी भाजन गुण, काल ने पांचां बोलां ओलखीजे— द्रव्य थी अनन्त द्रव्य, खेत्र थी अढ़ाई द्वीप प्रमाणे, काल थी आदि अन्त रहित, भाव थी अरूपी, गुण थी वर्त्तमान गुण; पुद्गलास्तिकाय ने पांच बोल थी ओलखीजे—द्रव्य थी अनन्ता द्रव्य, खेत्र थी लोक प्रमाणे, काल थी आदि अन्त रहित, भाव थी रूपी, गुण थी गले मले, जीवास्तिकाय ने पांच बोल करी ओलखीजे—द्रव्य थी अनन्ता द्रव्य, खेत्र थी लोक प्रमाणे, काल थी आदि अन्त रहित, भाव थी अरूपी, गुण थी चैतन्य गुण।

यह सुगम है।

इकीसवां बोल

इकीसव बोले राशि दोय—जीवराशि १, अजीवराशि २।

व्याख्या

संसार में मुख्यतया जीव व अजीव यह दो प्रकार की वस्तु है। इसके भेदानुभेद बहुत हैं, परन्तु मुख्य विभाग दो राशि है।

बाइसवां बोल

बाइसवें बोले श्रावक का १२ बारह व्रत—१ पहिला व्रत में श्रावक स्थावर जीव हणवा को प्रमाण करे और त्रस जीव हालतो चालतो हणवा को स उपयोग त्याग करे।

२ दूजा व्रत में मोटकी झूठ बोलवा का स उपयोग त्याग करे।

३ तीजा व्रत में श्रावक राजदण्डे लोक भण्डे इसी मोटकी चोरी करवा का त्याग करे।

४ चौथा व्रत में श्रावक मर्याद उपरान्त मैथुन सेवा को त्याग करे।

५ पांचवां व्रत में श्रावक मर्याद उपरान्त परिग्रह राखवा का त्याग करे।

६ छठा व्रत के विषै श्रावक दशों दिशि में मर्याद उपरान्त जावा का त्याग करे।

७ सातवां व्रत के विषै श्रावक उपभोग परिभोग का बोल २६ छब्बीस छै, जिणरी मर्याद उपरान्त त्याग करे तथा पंद्रे कर्मादान की मर्याद उपरान्त त्याग करे।

८ आठमां व्रत के विषै श्रावक मर्याद उपरान्त अनर्थ दण्ड का त्याग करै।

९ नवमां व्रत के विषै श्रावक सामायक की मर्याद करे।

१० दशमां व्रत के विषै श्रावक देसावगासी संबर की मर्याद करे।

११ इग्यारमूं व्रत श्रावक पोषह करे।

१२ बारमूं व्रत श्रावक शुद्ध साधू निर्ग्रन्थ ने निर्दोष आहार पाणी आदि चउदह प्रकार नो दान देवे।

व्याख्या

श्रावक के १२ व्रत हैं सो स्पष्ट हैं, ये १२ वृत पाठक को न केवल नाम से परन्तु यथासंभव यथाशक्ति वर्ताव से काम में लाने चाहिये। क्रमशः चेष्टा करने से सहज में बारह ही वृत आसानी से पालन किया जा सके—जैनधर्म की विशेपता यह है कि जिसकी जैसी सामर्थ्य व अभिरुचि है, उतने ही प्रमाण वृत ग्रहण कर सकता है परन्तु जितना वृत ग्रहण करे उतना ठीकसर पालन करना चाहिये और जैसे-जैसे अभ्यस्त हो जाय, वैसे वैसे अपने वृत का परिमाण वढ़ाता जाय। यह वृत धारण का अभ्यास वचपन में डालने से धर्म क्रिया के साथ-साथ जीवन इतना नियमित हो जायगा कि वह एक आदर्श नागरिक, सच्चा श्रावक होकर समाज की, देश की, राष्ट्र की, विश्व की विभूति वन सके।

पहले वृत में स्थावर जीव याने एकेन्द्रिय जीव की हिंसा यथासंभव त्याग करने का वृत ग्रहण करना चाहिये। सांसारिक गृहस्थ के हर तरह से एकेन्द्रिय की हिंसा अनिवार्य्य हो जाती है परन्तु उसमें भी अपनी जरूरत से ज्यादा न करना तो अपने हाथ है, जैसे वनस्पतिकाय संसार में वहुत है उनमें मनुष्य के खाने-पीने तथा अन्य काम में वहुत थोड़ी आती है, सो गृहस्थ अपने जरूरत के उपरान्त वनस्पति की हिंसा सहज में छोड़ सकता है। इसी तरह दूसरी दूसरी एकेन्द्रिय की हिंसा परिमाण के उपरान्त छोड़ सकता है। त्रस जीव को भी विना अपराधी को मारने के मतलव से हिंसा का त्याग हो सकता है। पहले वृत का जो व्यक्ति

परिमाण कर लेता है वह जीव मात्र से मैत्री की भावना रखता है। यह व्रत पालनेवाला श्रावक संसार में प्रेम व शान्ति का राज्य संस्थापित करने में सहायक होता है। स्वामीजी श्री १००८ श्री भिक्षुगणिराज कृत वारह व्रत की ढाल में इसका विस्तृत विवरण है। जिज्ञासुओं को उससे विशेष लाभ उठाना चाहिये।

दूसरे व्रत में मोटकी झूठ अर्थात् कन्यालीक, गोवलीक, भुम्यलीक, थापनमोसो, कुडी साख, यह सव मोटकी झूठ कहलाती है। सगपण (विवाह सम्वन्ध) में कन्या के विषय में झूठ, गौ आदि चतुष्पद जन्तु वेचते वक्त उसके विषय में झूठ, जगह जमीन के विषय में झूठ, किसी का थापन (गच्छित—डिपाजीट) को अस्वीकार करना, न्यायालय (कोर्ट में) जाकर शपथ लेकर झूठ वोलना, यह सव गृहस्थ श्रावक सहज में छोड़ सक्ते हैं। छात्र जीवन से ही झूठ वोलने की आदत कम करने से और मोटकी झूठ वोलने का त्याग करने से भावी जीवन में उस व्यक्ति की सत्यता की प्रतिष्ठा वढ़ने से सांसारिक लाभ तो होगा ही और असत्य त्याग के व्रत से आत्मिक कल्याण भी होगा।

तीसरा अदत्ता दान विरमण व्रत—श्रावक के लिये मोटकी चोरी याने चुराई वस्तु न लेना, चोर को साहाय्य न करना राज्य विरुद्ध कार्य्य न करना, अच्छी वस्तु दिखाकर क्रेता को खराव न देना, खोटा तोल, खोटा माप न करना यह सव श्रावक को अवश्य ध्यान में रख के तीसरा व्रत ग्रहण करना चाहिए। तीसरा व्रतवाला श्रावक वड़ी चोरी जैसे सेंध देकर,

दूसरी चाभी से ताला खोलकर, गांठ काटकर, दूसरों की पड़ी हुई वस्तु जान कर उठा लेना इत्यादि भी वर्जन करना चाहिये। छोटी चोरी श्रावक टाल सके तो बहुत अच्छा है लेकिन गृहस्थ से सब समय ऐसा व्रत पालन दुरूह हो जाता है। जैसे भाई भाई की वस्तु काम पड़ने से विना पूछे ले लेता है, यद्यपि यह वास्तव में चोरी है, परन्तु गृहस्थी से इतनी कड़ाई रह नहीं सकती वैसे ही ग्राम्यलोक जंगल से घास काष्ठ इत्यादि ले आते हैं। वास्तव में जंगल का घास काष्ठ आदि भी जमींदार का है सो विना पूछे लेना चोरी ही है। परन्तु ऐसी छोटी चोरी छोड़ बड़ी चोरी जिससे राजदंड मिले. लोकनिंदा हो सो तो जरूर श्रावक को छोड़ना उचित है।

चौथा—स्वदार संतोष व्रत—यह संपूर्ण ब्रह्मचर्य्य का प्रथम सोपान है। गृहस्थ संसारी मनुष्य संपूर्ण ब्रह्मचारी होकर जीवन विता नहीं सकता। अतः उसके लिये स्वपत्नी व्रत अर्थात् अपनी स्त्री छोड़ दूसरी स्त्री पशु देव मनुष्य आदि किसी से ब्रह्मचर्य्य नष्ट हो ऐसी क्रिया न करनी चाहिये। प्रत्येक मनुष्य के लिये सांसारिक, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक व शारीरिक उन्नति के वास्ते ब्रह्मचर्य्य व्रत ग्रहण करना उचित है। स्वपत्नी संतोष से दाम्पत्य जीवन पवित्र, नैतिक चरित्र उन्नत व समाज में शान्ति रहती है। हृदय व मन पवित्र रहता है और ऐसे स्वदारसन्तोषी सब के विश्वासपात्र होते हैं। बालक व युवकों के लिये तो किसी भी प्रकार की अनंग क्रीड़ा कुचेष्टा आदि बहुत हानिकर है। ब्रह्मचर्य्य पालन करने के लिये जैनागम में ९ बाड़ और एक कोट बतलाया है। जैसे ग्राम

की सीमा के पास क्षेत्र के चौतरफ वेड़ा न रहने से उसमें पशु सहज में घुस जाते हैं, वैसे ही संपूर्ण ब्रह्मचर्य्य की रक्षार्थ ६ दिवार व एक दुर्भेद्य प्राचीर बनानी चाहिये। वे निम्नलिखित हैं—

(१) जहां नारी रहती हो, वहां रात में ब्रह्मचारी को न रहना चाहिये।

(२) नारी का रूप, वाणी, गति, जाति आदि का सरस वर्णन बार बार नहीं करना।

(३) नारी के साथ एकासन पर नहीं बैठना।

(४) नारी का रूप सराग भाव से नहीं देखना।

(५) जिस मकान के कमरे में स्त्री पुरुष—पति पत्नी—रहते हों, उसके बगल में परदा या, मामूली टाटी के अन्तराल नहीं रहना।

(६) गये काल में यदि किसी स्त्री के साथ खाना-पीना भोग-विलास किया हो, वह याद न करना।

(७) प्रत्यह सरस गुरु आहार न करना।

(८) अधिक भोजन न करना।

(९) शरीर विभुषा न करना।

(१०) मनोज्ञ शब्द, रस, स्पर्श, गंध, वर्ण पर राग न करना। अमनोज्ञ पर द्वेष न करना।

प्रत्येक बालक युवक व वृद्ध को इस नव वाड़ का ख्याल रखना चाहिये। स्वामी भीखनजी कृत नव वाड़ की सरस चौपाई पढ़ कर विशेष हाल मालूम करना चाहिये। गृहस्थ यह नव वाड़ व

दशमा कोट जहां तक पालन करेगा उतना ही उसका चरित्र उन्नत होगा।

पांचवां व्रत—परिग्रह परिमाण—क्षेत्र, मकान, स्वर्ण, रौप्य, धनधान्य, द्विपद, चतुष्पद तांबा पीतल आदि का तैजसपत्र आदि का जरूरत मुजब रखना। जरूरत से उपरान्त का त्याग करना। जरूरत मुजब जो रखा जाता है, वह अव्रत में है। जो त्याग किया वह व्रत है। परिग्रह व्रत ग्रहण करने से लोभ सीमित होता है। यदि समस्त लोक अपनी आशा वांछा लोभ को मर्यादित कर व्रत ग्रहण करें तो संसार से पारस्परिक द्वेष घट जाय, संसार शान्ति-मय सुखमय बन जाय।

छट्ठा दिशि परिमाण व्रत—पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ऊर्द्ध व अधः जाने का परिमाण करना। समग्र जगत् विस्तृत व विशाल है। हरएक श्रावक सब जगह अपनी जिन्दगी में कभी जा नहीं सकता। हजारों लाखों में भी एक मनुष्य अपने घर के दो चार सौ कोस के ज्यादा शायद ही जाता होगा। व्यापार के व अर्थोपार्जन के कारण जितनी दूर जाना आवश्यक हो उतनी दूर की सीमा रख के उसके बाहर जाना त्याग देने से बाहर का आश्रव द्वार रुक जाता है। यावज्जीवन का यह व्रत होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक दिवस का परिमाण चौदह नियम चितारते वखत कर लेने से और भी सहूलियत होती है, चौदह नियम इसी पुस्तक के अन्त में दिये गये हैं।

सातवां भोगोपभोग परिमाण व्रत—प्रत्येक व्यक्ति अपने खाने

पीने पहरने आदि की वस्तु की मर्यादा कर ले तो उससे अधिक का जो अप्रत्यक्ष रूप से पाप लगता है वह रुक जाय और इच्छा नियन्त्रित होने से मानसिक बल बढ़ जाय।

आठवां अनर्थ दण्ड विरमण वृत—बिना स्वार्थ के काम भोग वृद्धि हो ऐसी बातें करना, भांड के तरह अंगभंगी करना, स्वजन छोड़ दूसरों का विवाहादि कराना अथवा स्त्री पुरुष में अन्तराय डालना, एक बेर भोगनेवाली या बार बार उपभोगवाली वस्तु का मर्यादा उपरान्त भोगना—यह सब अनर्थ दण्ड है। इसको त्यागने से यह वृत होता है। इसका सुफल स्पष्ट है जिसमें अपना स्वार्थ नहीं, वैसा कार्य्य करना या वस्तु भोगना लाभदायक नहीं।

नवमा सामायक वृत—प्रत्यह कम से कम दो घड़ी समस्त सांसारिक कार्य्य से निवृत्त होकर धर्म चिंतवना करना, सामायक करना जिससे कम से कम दिवस का ३० वां हिस्सा तो समस्त पापकार्य्य से रोका जाय।

दशमा देशावकाशिक वृत—दैनन्दिन जो सब नियम किया है उसके मुजब चलना। जितना दूर जाना, जितने दूर का वस्तु काम में लाने का प्रतिज्ञा किया है उसको उल्लंघन नहीं करना। इस वृत को व सातवां वृत को पालन करनेवाला सहज में स्वदेशी व स्वदेश के लोगों का सहायक हो सकता है। इससे आर्थिक प्रश्न बहुत सरल होता है पर वह तो सिर्फ सांसारिक दृष्टि से है। आत्मिक विकाश की दृष्टि से यह सब वृत परलोक के सहायक और आत्मोत्कर्ष के सहज सरल पंथ हैं।

ग्यारहवाँ पौषध व्रत—महिने में या वर्ष में एक दो दिन उपवास कर समस्त सांसारिक कार्य्य से निवृत्त होकर धर्म चिंतन करना।

बारहवाँ अतिथि संविभाग व्रत - शुद्ध साधुओं को निर्दोष आहार, पानी, वस्त्र, पात्र आदि कल्पती वस्तु दान करना।

इसके अलावे श्रावक को १५ कर्मादान जैसे इंगाल कर्म, वनकर्म, साडी कर्म, फोडी कर्म, दंतवाणिज्य, लाक्षावाणिज्य, रसवाणिज्य, केशवाणिज्य, विपवाणिज्य जन्तु पिलन कर्म, निर्लंछन कर्म, दावाग्नि कर्म, सरद्रह तालाव शोपण कर्म, असंयती पोपन कर्म आदि भी छोड़ना उचित है। इसकी विस्तृत व्यख्या प्रतिक्रमण की पाटी से व अनुभवी विद्वान् व साधु मुनिराज से धार लेनी चाहिये।

प्रत्येक श्रावक को बारह व्रत ग्रहण व पंद्रह कर्मादान त्याग के साथ-साथ पांच संलेखना भी जान कर उससे निवृत्त होना जरूरी है वह ५ यह हैं—इहलोकाशंसप्रयोग, परलोकाशंसप्रयोग, जीविताशंसप्रयोग, मरणाशंसप्रयोग, कामभोगाशंसप्रयोग। इनकी विस्तृत व्याख्या अनुभवी सज्जन व मुनिराजों से जान लेनी चाहिये।

तेइसवां बोल

तेइसवें बोलै साधूजी का पंच महाव्रत—१ पहिला महाव्रत में साधूजी सर्वथा प्रकारे जीव हिंसा करे नहीं, करावै नहीं, करतां ने भलो जाणै नहीं, मनसे, वचन से, काया से।

२ दूसरा महाव्रत में साधूजी सर्वथा प्रकार झूठ बोले नहीं, बोलावे नहीं, बोलतां प्रते भलो जाणे नहीं, मन से, वचन से, काया से।

३ तीजा महाव्रत में साधूजी सर्वथा प्रकारै चोरी करे नहीं, करावे नहीं, करतां प्रते भलो जाणे नहीं, मन से, वचन से. काया से।

४ चौथा महाव्रत में साधूजी सर्वथा प्रकारे मैथुन सेवे नहीं, सेवावे नहीं, सेवतां प्रते भलो जाणे नहीं, मन से, वचन से, काया से।

५ पांचवां महाव्रत में साधूजी सर्वथा प्रकारे परिग्रह राखे नहीं, रखावे नहीं, राखतां प्रते भलो जाणे नहीं, मन से, वचन से, काया से।

व्याख्या

साधु के पांच महाव्रत स्पष्ट वर्णित हैं। इसे जान कर ही सुसाधु व नाममात्र वेषधारी साधु की पहिचान हो सकती है।

हरएक व्यक्ति पंच महाव्रत को समझ लेने से सहज में कुगुरु के पंजे से छुटकारा पा सकेगा। आज भारतवर्ष में साधु नामधारी लाखों मनुष्य होंगे परन्तु सच्चे साधु कितने हैं? जो पांच महाव्रत मन, वचन, काया से करना, करवाना व अनुमोदना यह त्रिकरण त्रियोग से पाल सके, वे ही वास्तव में कहने, पूजने, नमस्कार करने के योग्य हैं।

चौवीसवां बोल

चौवीसवें बोले भागां ४९ गुणचास—करण ३ जोग ३ तीन से हुवै।

करण ३ का नाम—करूं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं जोग ३ का नाम—मनसा, वायसा, कायसा।

आंक ११ का भागा ६---एक करण एक जोग से कहणा, करूं नहीं मनसा १. करूं नहीं वायसा २, करूं नहीं कायसा ३, कराऊं नहीं मनसा ४, कराऊं नहीं वायसा ५, कराऊं नहीं कायसा ६, अनुमोदूं नहीं मनसा ७, अनुमोदूं नहीं वायसा ८, अनुमोदूं नहीं कायसा ९।

आंक १२, बारमां का भांगा ९—एक करण दोय जोग से, करूं नहीं मनसा वायसा १, करूं नहीं मनसा कायसा २, करूं नहीं वायसा कायसा ३. कराऊं नहीं मनसा वायसा ४, कराऊं नहीं मनसा कायसा ५, कराऊं नहीं वायसा कायसा ६, अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा ७, अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा ८, अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा ९।

आंक १३, का भांगा ३, तीन—एक करण तीन जोग से, करूं नहीं मनसा वायसा कायसा १, कराऊं नहीं मनसा वायसा कायसा २, अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा कायसा ३।

आंक २१ का भांगा ९—दोय करण एक जोग से, करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा १, करूं नहीं कराऊं नहीं वायसा २, करूं नहीं कराऊं नहीं कायसा ३, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा ४, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा ५, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं कायसा ६, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा ७, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा ८, करावूं नहीं अनुमोदूं नहीं कायसा ९।

आंक २२ बावीस का भांगा ९ नव—दोय करण दोय जोग से, करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा वायसा १, करूं नहीं कराऊं नहीं

मनसा कायसा २, करूं नहीं कराऊं नहीं बायसा कायसा ३, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा बायसा ४, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा ५, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं बायसा कायसा ६, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा बायसा ७, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा ८, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं बायसा कायसा ९।

आंक २३ तेवीस का भांगा ३ तीन—दोय करण तीन जोगसें, करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा बायसा कायसा १, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा बायसा कायसा २, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा बायसा कायसा ३।

आंक ३१ का भांगा ३ तीन—तीन करण एक जोगसें, करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा १, करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं बायसा २, करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं कायसा ३।

आंक ३२ बत्तीस का भांगा ३ तीन—तीन करण दोय जोग से करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा बायसा १, करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा २. करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं बायसा कायसा ३।

आंक ३३ तैंतीस को भांगो १ एक—तीन करण तीन योग से करूं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं मनसा बायसा कायसा।

व्याख्या

३ करण व ३ योग के समवाय से ४९ भागा होते हैं, वह अलग अलग बताये हैं।

करण	योग
१ करूँ नहीं	१ मनसे
२ कराऊं नहीं	२ वचनसे
३ अनुमोदूं नहीं	३ कायासे

इन करण के एक एक को योगके एक एक साथ, अथवा करण के दो दो के योगके एक एक साथ, अथवा करण के तीन को योग के एक के साथ, अथवा करण के एक एक योग के दो दो साथ, करण का दो दो योग के दो दो साथ, करण का तीन योग के दो दो साथ अथवा करण का एक एक योग के तीन के साथ, करण का दो दो योग के तीन साथ, करण का तीन योग के तीन साथ, मिलाकर यह ४९ भांगे आते हैं। इन्हें जानने से व उसके अनुसार व्रत नियम पच्चखान करने से जीव बहुत उन्नत व संयमित हो सकता है।

पच्चीसवां बोल

पचीसमें बोलें चारित्र पांच—सामायिक चारित्र १; छेदोपस्थापनीय चारित्र २, पड़िहार विशुद्ध चारित्र ३ सूक्ष्म संपराय चारित्र ४ यथाख्यात चारित्र ५।

व्याख्या

यह साधु के चारित्र के उत्तरोत्तर विशुद्ध भाव को लेकर पांच भेद बताया है। विशेष जानकारी के लिये सुश्रावक व मुनिराज से धारणा ठीक है क्योंकि यह सब बात छोटी सी पुस्तक में विस्तार से लिखना सहज नहीं।

वैराग्योत्पादक छन्द

कवित्त

कैसे करि केतकी कनेर एक कहि जाय,
आक-दूध गाय-दूध अन्तर घनेर है।
पीरी होत रीरी पै न रीस करै कंचन की,
कहां काग-बानी कहां कोयल की टेर है ।।
कहां भानु भारौ कहां आगिया विचारौ कहां,
पूनौ कौ उजारौ कहां मावस अँधेर है।
पच्छ छोरि पारखी निहारौ नेक नीके करि.
जैन-वैन और वैन इतनौ ही फेर है ।। १ ।।

रूप को न खोज रह्यो तरु ज्यौं तुषार दह्यौ,
भयौ पतझार किधौं रही डार सूनी सी।
कूबरी भई है कटि दूबरी भई है देह,
ऊबरी इतेक आयु सेर माहिं पूनीसी ।।
जोबन न विदा लीनी, जरा नैं जुहार कीनी,
हानि भई सुधि बुधि सबै बात ऊनीसी।
तेज घट्यो ताव घट्यो जीतब को चाव घट्यो,
और सब घट्यो एक तिस्ना दिन दूनीसी ।। २ ।।

धंध ही में ध्यायो पै न ध्यायो है धरम रुख,
पायो दुःख द्वन्द्व में न पायो सुख पाईवो।
गायो जान आन पै न गायो भगवान भान,
आयो जो न ज्ञान कहा नर जोनि आईवो ॥
मान में न मायो अन्ध काहू न नमायो कन्ध,
किसन परेगो खरो ताहि पछिताईवो।
आप को ही भायो भायो पाप को उपायो पायो,
बंधी मुट्ठी आयो पै पसार हाथ जाईवो ॥ ३ ॥
उकति उपाई एती उमर गमाई,
कछु कीनी न कमाई काज भयो न भलाई को।
औधि जब आई तब कोऊ न सहाई भाई,
राई भर कछु न बसाई ठकुराई को ॥
आई पहुंचाई पछिताई माई बाई जाई,
छूटो नातो तूटो तांतो किसन सगाई को।
इहां तो सदा ही धाम धूम ही चलाई,
पर उहां तो नहीं है भाई राज पोपांबाई को ॥ ४ ॥
जीवित जरासा दुख जनम जरासा तापै,
डर है खरासा काल सिर पैं खरासा है।
कोऊ विरलासा जो पै जीवै द्वै पचासा,
अन्त वन बीच वासा यही बात का खुलासा है ॥
संध्या का-सा भान कान करिवर का-सा जान,
चलदल सा पान चपला-सा उजासा है।

ऐसा सार हासा तापै किसन अनन्त आसा,
पानी का बतासा तैसा तन का तमासा है ॥ ५ ॥

कालु गणिराज गुण वर्णन छन्द

(तुलसी गणिराज कृत)

आनन अमन्द वारो भाल अर्द्ध चन्द वारो,
गमन गयन्दवारो भव्य मन हरय्यो ।
नैन अरविन्द वारो वैन पिक वृन्द वारो,
चैन देन हारो भव सिन्धु पार तरय्यो ॥
आतप दिनेन्द्र वारो पौरुष मृगेन्द्र वारो,
कर्म कंस कन्दन मुकन्द अनुहरय्यो ।
शासन सितारो भिक्षु-गणको रुखारो,
मूलचन्द को दुलारो कालू स्वर्ग-लच्छी वरय्यो ॥१॥
धर्म धुर धारण समारण शरण काज,
मानो वीर अन्तिम जिनेश अवतरय्यो ।
सकल सिद्धान्त को विचार सार सार धार,
नाना उपदेश धार अमृत उचरय्यो ॥
विद्या को प्रचार निज बुद्धि ते अपार करी,
अक्षय खजानो खूब कूट कूट भरय्यो ।
शासन सितारो भिक्षु गण को रुखारो,
मूलचन्द को दुलारो कालू स्वर्ग-लच्छी वरय्यो ॥२॥

भव्य नरनार भव वार पार तारन कूं.
ग्राम नग्र देश वो प्रदेश में विचरग्यो।
कुनय कुनीति वो कुरीति से न प्रीति कदा,
काम क्रोध कातरता नाम से बिसरग्यो॥
विनय विवेक वर विद्या वो विचक्षणता.
वोध विधि तें विनयी-वर्ग में विलरग्यो।
शासन सितारो भिक्षु गणको रुखारो,
मूलचन्द को दुलारो कालू स्वर्ग-लच्छी वरग्यो॥३॥
संघ को अभंग प्रतिपालू श्रीगणेश कालू,
सप्त बीस वर्ष लौं अचक्का राज करग्यो।
मनोवल चंग अंग आकृति सुरंग देख,
नेक नर नारिन को हियो खूब ठरग्यो॥
अलौकिक वात जाको स्वच्छ अवदात ऐसो,
विश्वनाथ विश्व में विख्यात ख्यात करग्यो।
शासन सितारो भिक्षु गणको रुखारो,
मूलचन्द को दुलारो कालू स्वर्ग-लच्छी वरग्यो॥४॥

पाना की चर्चा

[पच्चीश बोल की बात दृढ रूप से हृदय में अंकित करने के लिए अनुभवी आचार्य्य महाराज प्रश्नोत्तर रूप में विभिन्न दृष्टि से उनकी ओलखान बताई है सो जरा ध्यान रखकर पढ़ने से सहज में बोध-गम्य हो जायगी और जीव अजीवादि नव पदार्थ, छवतत्त्व की बात बहुत सी समझ में आ जायगी।]

॥ लड़ी पहली—रूपी अरूपी की ॥

१ जीव रूपी के अरूपी ? अरूपी। किण न्याय—कालो पीलो नीलो रातो धोलो ए पांच वर्ण नहीं पावे इण न्याय।

२ अजीव रूपी के अरूपी ? रूपी अरूपी दोनूं ही। किण न्याय—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल ये च्यारूं तो अरूपी और पुद्गलास्तिकाय रूपी।

३ पुन्य रूपी के अरूपी ? रूपी। ते किण न्याय—पुन्य ते शुभ कर्म, कर्म ते पुदूगल, पुदूगल ते रूपी ही छै।

४ पाप रूपी के अरूपी ? रूपी। ते किण न्याय—पाप ते अशुभ कर्म, कर्म ते पुद्गल, पुद्गल ते रूपी।

५ आश्रव रूपी के अरूपी ? अरूपी। ते किण न्याय—आश्रव जीव का परिणाम छै, परिणाम ते जीव छै, जीव ते अरूपी छै, पांच वर्ण पावे नहीं इण न्याय।

६ संवर रूपी के अरूपी ? अरूपी। किण न्यायः—पांच वर्ण पावे नहीं ।

७ निर्जरा रूपी के अरूपी ? अरूपी छै। ते किण न्यायः—निर्जरा जीव का परिणाम छै, पांच वर्ण पावे नहीं इण न्याय।

८ बन्ध रूपी के अरूपी ? रूपी। किण न्यायः—बन्ध ते शुभ अशभ कर्म छै, कर्म ते पुद्‌गल छै, पुद्‌गल ते रूपी छै।

९ मोक्ष रूपी के अरूपी ? अरूपी छै। ते किण न्यायः—समस्त कर्म से मुकावे ते मोक्ष अरूपी, ते जीव सिद्ध थया ते मां पांच वर्ण पावे नहीं इण न्याय।

॥ लड़ी दूजी-सावद्य निरवद्य की ॥

१ जीव सावद्य के निरवद्य ? दोनूं ही छै। ते किण न्यायः—चोखा परिणाम निरवद्य, खोटा परिणाम सावद्य छै।

२ अजीव सावद्य के निरवद्य ? दोनूं नहीं—अजीव छै।

३ पुन्य सावद्य के निरवद्य ? दोनूं नहीं—अजीव छै।

४ पाप सावद्य के निरवद्य ? दोनूं नहीं—अजीव छै।

५ आश्रव सावद्य के निरवद्य ? दोनूं ही छै। किण न्यायः—मिथ्यात्व आश्रव, अब्रत आश्रव, प्रमाद आश्रव, कषाय आश्रव, ये चार तो एकान्त सावद्य छै, शुभ जोगां से निर्जरा होय जिण आसरी निरवद्य छै अशुभ, जोग सावद्य छै।

६ संवर सावद्य के निरवद्य ? निरवद्य छै। ते किण न्यायः—कर्म तोड़वारा परिणाम निरवद्य छै।

७ निर्जरा सावद्य के निरवद्य ? निरवद्य छै। किण न्यायः—कर्म तोड़वारा परिणाम निरवद्य छै।

८ बन्ध सावद्य के निरवद्य ? दोनूं नहीं। ते किण न्यायः—अजीव छै इण न्याय।

९ मोक्ष सावद्य के निरवद्य ? निरवद्य छै। ते किण न्यायः—सकल कर्म मुकाय सिद्ध भगवन्त थया ते निरवद्य छै।

॥ लड़ी तीजी-आज्ञा मांहि वाहिर की ॥

१ जीव आज्ञा मांहि के वाहिर ? दोनूं छै। ते किण न्यायः—जीवका चोखा परिणाम आज्ञा मांहि, खोटा परिणाम आज्ञा वाहिर छै।

२ अजीव आज्ञा मांहि के वाहिर ? दोनूं नहीं। अजीव छै।

३ पुन्य आज्ञा मांहि के वाहिर ? दोनूं नहीं। अजीव छै इण न्याय।

४ पाप आज्ञा मांहि के वारे ? दोनूं नहीं। अजीव छै।

५ आश्रव आज्ञा मांहि के वाहिर ? दोनूं ही छै। ते किण न्यायः—आश्रव नां पांच भेद छै और तिण में मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय ए चार तो आज्ञा वाहिर छै, अने जोग नां दोय भेद, शुभ जोग तो आज्ञा मांहि छै, अशुभ जोग आज्ञा वाहिर छै।

६ संवर आज्ञा मांहि के वाहिर ? आज्ञा मांहि छै। ते किण न्यायः—कर्म रोकवारा परिणाम आज्ञा मांहि छै।

७ निर्जरा आज्ञा मांहि के वाहिर ? आज्ञा मांहि छै। ते किण न्यायः—कर्म तोड़वारा परिणाम आज्ञा मांहि छै।

८ बन्ध आज्ञा मांहि के बाहिर ? दोनूं नहीं। ते किण न्याय—आज्ञा मांहि बाहिर तो जीव हुवे ए बन्ध तो अजीव छै इणन्याय।
९ मोक्ष आज्ञा मांहि के बाहिर ? आज्ञा मांहि छै। ते किण न्याय—कर्म मुकाय सिद्ध थया ते आज्ञा में छै।

॥ लड़ी चौथी—जीव चोर के साहूकार ॥

१ जीव चोर के साहूकार ? दोनूं छै। किण न्याय—चोखा परिणामां साहूकार छै माठा परिणामां चोर छै।
२ अजीव चोर के साहूकार ? दोनूं नहीं। किण न्याय—चोर साहूकार तो जीव हुवै ये अजीव छै।
३ पुन्य चोर के साहूकार ? दोनूं नहीं। अजीव छै।
४ पाप चोर के साहूकार ? दोनूं नहीं। अजीव छै।
५ आश्रव चोर के साहूकार ? दोनूं छै। किण न्याय—चार आश्रव तो चोर छै, अने अशुभ जोग पण चोर छै, शुभ जोग साहूकार छै।
६ संवर चोर के साहूकार ? साहूकार छै। किण न्याय—कर्म रोकवा रा परिणाम साहूकार छै।
७ निर्जरा चोर के साहूकार ? साहूकार छै। किण न्याय—कर्म तोड़वारा परिणाम साहूकार छै।
८ वंध चोर के साहूकार ? दोनूं नहीं, अजीव छै
९ मोक्ष चोर के साहूकार ? साहूकार। किण न्याय—कर्म मुकाय कर सिद्ध थया ते साहूकार छै।

॥ लड़ी पांचमी—जीव अजीव की ॥

१ जीव ते जीव छै के अजीव ? जीव । ते किण न्याय—सदा काळ जीव को जीव रहसे अजीव कदे हुवे नहीं ।

२ अजीव ते जीव छै के अजीव छै ? अजीव छै । अजीव को जीव किण ही काल में हुवै नहीं ।

३ पुन्य जीव छै के अजीव छै ? अजीव छै । ते किण न्याय—पुन्य ते शुभ कर्म पुद्गल छै पुद्गल ते अजीव छै ।

४ पाप जीव छै के अजीव छै ? अजीव छै। किण न्याय—पाप ते अशुभ कर्म पुद्गल छै, पुद्गल ते अजीव छै ।

५ आश्रव जीव छै के अजीव छै ? जीव छै । ते किण न्याय—शुभ अशुभ कर्म ग्रहे ते आश्रव छै, कर्म ग्रह ते जीव ही छै ।

६ संवर जीव के अजीव ? जीव छै । ते किण न्याय—कर्म रोके ते जीव ही छै ।

७ निर्जरा जीव के अजीव ? जीव छै । किण न्याय—कर्म तोड़े ते जीव छै ।

८ बन्ध जीव छै के अजीव छै ? अजीव छै । ते किण न्याय—शुभ अशुभ कर्म को बन्ध अजीव छै ।

९ मोक्ष जीव के अजीव ? जीव छै । किण न्याय—समस्त कर्म मुकावे ते मोक्ष जीव छै ।

॥ लड़ी छट्ठी—जीव छांडवा जोग के आदरवा जोग ॥

१ जीव छांडवा जोग के आदरवा जोग ? छांडवा जोग छै। किण-न्याय—पोते जीव नूं भाजन करे अनेरा जीव पर ममत्व भाव न करे।

२ अजीव छांडवा जोग के आदरवा जोग ? छांडवा जोग छै। किण न्याय—अजीव छै।

३ पुन्य छांडवा जोग के आदरवा जोग ? छांडवा जोग छै। ते किण न्याय—पुन्य ते शुभ कर्म पुद्गल छै, कर्म ते छांडवा ही जोग छै।

४ पाप छांडवा जोग के आदरवा जोग ? छांडवा जोग छै। किण न्याय—पाप ते अशुभ कर्म छै जीव ने दुखदाई छै ते छांडवा ही जोग छै।

५ आश्रव छांडवा जोग के आदरवा जोग ? छांडवा जोग छै। किण न्याय—आश्रव द्वारे जीव रे कर्म लागे छै, आश्रव कर्म आवा नां बारणा छै, ते छांडवा जोग छै।

६ संवर छांडवा जोग के आदरवा जोग ? आदरवा जोग छै। किण न्याय—कर्म रोके ते संवर छै, ते आदरवा जोग छै।

७ निर्जरा छांडवा जोग के आदरवा जोग ? आदरवा जोग छै। किण न्याय—देश थी कर्म तोड़ै देश थी जीव उज्ज्वल थाय ते निर्जरा छै, ते आदरवा जोग छै।

८ बंध छांडवा जोग के आदरवा जोग ? छांडवा जोग छै। ते किण न्याय—शुभ अशुभ कर्म नो बंध छांडवा जोग ही छै।

९ मोक्ष छांडवा जोग के आदरवा जोग ? आदरवा जोग छै। ते किण न्याय—सकल कर्म खपावे, जीव निर्मल थाय, सिद्ध हुवे, इण न्याय आदरवा जोग छै।

॥ षटद्रव्य पे लड़ी सातमी—रूपी अरूपी की ॥

१ धर्मास्तिकाय रूपी के अरूपी ? अरूपी। किण न्याय—पांच वर्ण नहीं पावे इण न्याय।

२ अधर्मास्तिकाय रूपी के अरूपी ? अरूपी। किण न्याय—पांच वर्ण नहीं पावे इणन्याय।

३ आकाशास्तिकाय रूपी के अरूपी ? अरूपी। किण न्याय—पांच वर्ण नहीं पावे इणन्याय।

४ काल रूपी के अरूपी ? अरूपी। किणन्याय—पांच वर्ण नहीं पावे इण न्याय।

५ पुद्गल रूपी के अरूपी ? रूपी। किण न्याय—पांच वर्ण पावे इण न्याय।

६ जीव रूपी के अरूपी ? अरूपी। किण न्याय—पांच वण नहीं पावे इण न्याय।

॥ छव द्रव्य पर लड़ी आठमी सावद्य निरवद्यकी ॥

१ धर्मास्तिकाय सावद्य के निरवद्य ? दोनूं नहीं। अजीव छै।

२ अधर्मास्तिकाय सावद्य के निरवद्य ? दोनूं नहीं। अजीव छै।
३ आकाशास्तिकाय सावद्य के निरवद्य ? दोनूं नहीं। अजीव छै।
४ काल सावद्य के निरवद्य ? दोनूं नहीं। अजीव छै।
५ पुद्गलास्तिकाय सावद्य के निरवद्य ? दोनूं नहीं। अजीव छै।
६ जीवास्तिकाय सावद्य के निरवद्य ? दोनूं छै। खोटा परिणाम सावद्य छै, चोखा परिणाम निरवद्य छै।

॥छव द्रव्य पर लड़ी नवमी आज्ञा मांहि बाहिर की॥

१ धर्मास्तिकाय आज्ञा मांहि के बाहर ? दोनूं नहीं। ते किण न्याय—आज्ञा मांहि बाहिर तो जीव छै अने ए अजीव छै।
२ अधर्मास्तिकाय आज्ञा मांहि के बाहिर ? दोनूं नहीं। किण न्याय अजीव छै।
३ आकाशास्तिकाय आज्ञा मांहि के बाहिर ? दोनूं नहीं। किण न्याय—अजीव छै।
४ काल आज्ञा मांहि के बाहिर ? दोनूं नहीं। किण न्याय—अजीव छै।
५ पुद्गल आज्ञा मांहि के बाहिर ? दोनूं नहीं। किण न्याय—अजीव छै।
६ जीव आज्ञा मांहि के बाहिर ? दोनूं छै। किण न्याय—निरवद्य करणी आज्ञा मांहि छै सावद्य करणी आज्ञा बाहर छै इण न्याय।

॥ लड़ी दसमी चोर साहूकार की ॥

१ धर्मास्तिकाय चोर के साहूकार ? दोनूं नहीं। किण न्याय—चोर साहूकार जीव छै, ए धर्मास्तिकाय अजीव छै, इण न्याय।

२ अधर्मास्तिकाय चोर के साहूकार ? दोनूं नहीं । अजीव छै ।
३ आकाशास्तिकाय चोर के साहूकार ? दोनूं नहीं । अजीव छै ।
४ काल चोर के साहूकार ? दोनूं नहीं । अजीव छै ।
५ पुद्गल चोर के साहूकार ? दोनूं नहीं । अजीव छै ।
६ जीव चोर के साहूकार ? दोनूं छै । किण न्याय—माठा परिणाम आसरी चोर छै, चोखा परिणामां आसरी साहूकार छै ।

॥ छव द्रव्य पर लड़ी ११ मी—जीव अजीव की ॥

१ धर्मास्तिकाय जीव के अजीव ? अजीव छै ।
२ अधर्मास्तिकाय जीव के अजीव ? अजीव छै ।
३ आकाशास्तिकाय जीव के अजीव ? अजीव छै ।
४ काल जीव के अजीव ? अजीव छै ।
५ पुद्गलास्तिकाय जीव के अजीव ? अजीव छै ।
६ जीवास्तिकाय जीव के अजीव ? जीव छै ।

॥ छव द्रव्य पर लड़ी बारमी—एक अनेक की ॥

१ धर्मास्तिकाय एक छै के अनेक छै ? एक छै । किण न्याय—द्रव्य थकी एक ही द्रव्य छै ।
२ अधर्मास्तिकाय एक छै के अनेक छै ? एक छै । द्रव्य थकी एक ही द्रव्य छै ।
३ आकाशास्तिकाय एक के अनेक ? एक छै । लोक अलोक प्रमाणे एक ही द्रव्य छै ।

४ काल एक छै के अनेक छै ? अनेक छै । द्रव्य थकी अनन्ता द्रव्य छै इण न्याय ।

५ पुद्गल एक छै के अनेक छै ? अनेक छै । द्रव्य थकी अनन्ता द्रव्य छै इण न्याय ।

६ जीव एक छै के अनेक छै ? अनेक छै । अनन्ता छै इण न्याय ।

॥ लड़ी तेरमी ॥

छव में नव में की चर्चा

१ कर्मां को कर्त्ता छव पदार्थ में कोण ? नव तत्व में कोण ? उत्तर—छव में जीव, नव में जीव, आश्रव ।

२ कर्मां को उपार्जिता छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव, आश्रव ।

३ कर्मां को लगावता छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव, आश्रव ।

४ कर्मां को रोकता छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव, संवर ।

५ कर्मां को तोड़ता छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव, निर्जरा ।

६ कर्मां को बांधता छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव, आश्रव ।

७ कर्मां को मुकावता छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव, मोक्ष ।

॥ लड़ी चौदमी ॥

१ अठारे पाप सेवे ते छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव, आश्रव।

२ अठारे पाप सेवा का त्याग करे ते छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव, संवर।

३ सामायिक छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव संवर।

४ वृत छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव संवर।

५ अव्रत छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव नव में जीव आश्रव।

६ अठारे पाप को वहरमण छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव संवर।

७ पञ्च महाव्रत छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव, संवर

८ पांच चारित्र छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव, संवर।

९ पांच सुमति छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव, निर्जरा।

१० तीन गुप्ती छव में कोण ? नव में कोण ? उ०—छव में जीव, नव में जीव संवर।

११ बारे भ्रत छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव, संवर ।

१२ धर्म छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव, संवर, निर्जरा ।

१३ अधर्म छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव, आश्रव ।

१४ दया छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव, संवर, निर्जरा ।

१५ हिंसा छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव, आश्रव ।

॥ लड़ी पंद्रमी ॥

१ जीव छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव, आश्रव, संवर, निर्जरा, मोक्ष ।

२ अजीव छव में कोण ? नव में कोण ? छव में पांच, नव में अजीव, पुन्य, पाप, बन्ध ।

३ पुन्य छव में कोण ? नव में कोण ? छव में पुद्गल, नव में अजीव, पुन्य, बन्ध ।

४ पाप छव में कोण ? नव में कोण ? छव में पुद्गल, नव में अजीव, पाप, बन्ध ।

५ आश्रव छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव, आश्रव ।

६ संबर छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव नव में जीव, संबर।

७ निर्जरा छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव, निर्जरा।

८ वंध छव में कोण ? नव में कोण ? छव में पुद्गल, नव में अजीव, पुन्य, पाप, वंध।

९ मोक्ष छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव, मोक्ष।

॥ लड़ी सोलमी ॥

१ धर्मास्ति छव में कोण ? नव में कोण ? छव में धर्मास्ति, नव में अजीव।

२ अधर्मास्ति छव में कोण ? नव में कोण ? छव में अधर्मास्ति नव में अजीव।

३ आकाशास्ति छव में कोण ? नव में कोण ? छव में आकाशास्ति, नव में अजीव।

४ काल छव में कोण ? नव में कोण ? छव में काल, नव में अजीव।

५ पुद्गल छव में कोण ? नव में कोण ? छव में पुद्गल नव में अजीव, पुन्य, पाप, बंध।

६ जीव छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव नव में जीव, आश्रव, संवर, निर्जरा, मोक्ष।

॥ लड़ी सतरमी ॥

१ लेखन (कलम) पूठो कागद को पानो, लकड़ी की पाटी छव में कोण ? नव में कोण ? छव में पुद्गल, नव में अजीव ।

२ पात्रो, रजोहरण, चादर, चोलपट्टो, आदि भण्ड उपगरण, छव में कोण ? नव में कोण ? छव में पुद्गल, नव में अजीव ।

३ धान को दाणो, छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव ।

४ रूंख (वृक्ष) छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव ।

५ तावड़ो छायां छव में कोण ? नव में कोण ? छव में पुद्गल नव में अजीव ।

६ दिन रात छव में कोण ? नव में कोण ? छव में काल, नव में अजीव ।

७ श्री सिद्ध भगवान छव में कोण ? नव में कोण ? छव में जीव, नव में जीव, मोक्ष ।

॥ लड़ी अठारमी ॥

१ पुन्य और धर्म एक के दोय ? दोय । किणन्याय—पुन्य तो अजीव छै, धर्म जीव छै ।

२ पुन्य और धर्मास्ति एक के दोय ? दोय । किणन्याय—पुन्य तो रूपी छै, धर्मास्ति अरूपी छै ।

३ धर्म और धर्मास्ति एक के दोय ? दोय। किणन्याय—धर्म तो जीव छै धर्मास्ति अजीव छै।

४ अधर्म और अधर्मास्ति एक के दोय ? दोय। किणन्याय—अधर्म तो जीव छै, अधर्मास्ति अजीव छै।

५ पुन्य अने पुन्यवान एक के दोय ? दोय। किणन्याय—पुन्य तो अजीव छै, पुन्यवान जीव छै।

६ पाप अने पापी एक के दोय ? दोय। किणन्याय—पाप तो अजीव छै, पापी जीव छै।

७ कर्म अने कर्मां को करता एक के दोय ? दोय। किणन्याय—कर्म तो अजीव छै, कर्मां रो कर्ता जीव छै।

॥ लड़ी उन्नीसमी ॥

१ कम जीव के अजीव ? अजीव छै।

२ कर्म रूपी के अरूपी ? रूपी छै।

३ कर्म सावद्य के निरवद्य, दोनूं नहीं, अजीव छै।

४ कर्म चोर के साहूकार, दोनूं नहीं अजीव छै।

५ कर्म आज्ञा मांहि के बाहिर ? दोनूं नहीं अजीव छै।

६ कर्म छांडवा जोग के आदरवा जोग ? छांडवा जोग छै।

७ आठ कर्मां में पुन्य कितना ? पाप कितना ? ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, अन्तराय, ए चार कर्म तो एकान्त पाप छै, वेदनी, नाम, गोत्र, आयु ए चार कर्म पुन्य पाप दोनूं ही छै।

॥ लड़ी बीसमी ॥

१ धर्म जीव के अजीव ? जीव छै।

२ धर्म सावद्य के निरवद्य ? निरवद्य छै।

३ धर्म आज्ञा मांहि के बाहिर ? श्री वीतराग देव की आज्ञा मांहि छै।

४ धर्म चोर के साहूकार ? साहूकार छै।

५ धर्म रूपी के अरूपी ? अरूपी छै।

६ धर्म छांड़वा जोग के आदरवा जोग ? आदरवा जोग छै।

७ धर्म पुन्य के पाप ? दोनूं नहीं। किण न्याय ? धर्म तो जीव छै, पुन्य पाप अजीव छै।

॥ लड़ी इक्कीसमी ॥

१ अधर्म जीव के अजीव ? जीव छै।

२ अधर्म सावद्य के निरवद्य ? सावद्य छै।

३ अधर्म चोर के साहूकार ? चोर छै।

४ अधर्म आज्ञा मांहि के बाहर, बाहर छै।

५ अधर्म रूपी के अरूपी ? रूपी छै।

६ अधर्म छांडवा जोग के आदरवा जोग ? छांडवा जोग छै।

७ अधर्म पुन्य के पाप ? दोनूं नहीं। किणन्याय—पुन्य पाप अजीव छै अधर्म जीव छै।

॥ लड़ी बाईसमी ॥

१ सामायक जीव के अजीव ? जीव छै।

२ सामायक सावद्य के निरवद्य ?. निर्वद्य छै।

३ सामायक चोर के साहूकार ? साहूकार छै।

४ सामायक आज्ञा मांहि के बाहर ? आज्ञा मांहि छै।

५ सामायक रूपी के अरूपी ? अरूपी छै।

६ सामायक छांडवा जोग के आदरवा जोग ? आदरवा जोग छै।

७ सामायक पुन्य के पाप ? दोनूं नहीं। किणन्याय—पुन्य पाप अजीव छै, सामायक जीव छै।

॥ लड़ी तेवीसमी ॥

१ सावद्य जीव के अजीव ? जीव छै।

२ सावद्य सावद्य छै के निरवद्य ? सावद्य छै।

३ सावद्य आज्ञा मांहि के बाहर ? बाहर छै।

४ सावद्य चोर के साहूकार ? चोर छै।

५ सावद्य रूपी के अरूपी ? अरूपी छै।

६ सावद्य छांडवा जोग के आदरवा जोग ? छांडवा जोग छै।

७ सावद्य पुन्य के पाप ? दोनूं नहीं। पुन्य पाप तो अजीव छै सावद्य जीव छै।

॥ लड़ी चौबीसमी ॥

१ निरवद्य जीव के अजीव ? जीव छै।

२ निरवद्य सावद्य के निरवद्य ? निरवद्य छै।

३ निरवद्य चोर के साहूकार ? साहूकार छै।
४ निरवद्य आज्ञा मांहि के वाहर ? मांहि छै।
५ निरवद्य रूपी के अरूपी ? अरूपी छै।
६ निरवद्य छांडवा जोग के आदरवा जोग ? आदरवा जोग छै।
७ निरवद्य धर्म के अधर्म ? धर्म छै।
८ निरवद्य पुन्य के पाप ? पुन्य पाप दोनूं नहीं। किणन्याय—पुन्य पाप तो अजीव छै, निरवद्य जीव छै।

॥ लड़ी पचीसमी ॥

१ नव पदार्थ में जीव कितना पदार्थ ? अने अजीव कितना पदार्थ ? जीव, आश्रव, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये पांच तो जीव छै, अने अजीव, पुन्य पाप, वन्ध, ये च्यार पदार्थ अजीव छै।
२ नव पदार्थ में सावद्य कितना निरवद्य कितना ? जीव अनें आश्रव ये दोय तो सावद्य निरवद्य दोनूं। अजीव, पुन्य, पाप, वन्ध, ये सावद्य निरवद्य दोनूं नहीं। संवर, निर्जरा, मोक्ष, ये तीन पदार्थ निरवद्य छै।
३ नव पदार्थ में आज्ञा मांहि कितना आज्ञा वाहर कितना। जीव, आश्रव, ये दोय तो आज्ञा मांहि पण छै, अने आज्ञा वाहर पण छै। अजीव, पुन्य, पाप, वंध, ये च्यार आज्ञा मांहि वाहर दोनूं ही नहीं। संवर, निर्जरा, मोक्ष, ये आज्ञा मांहि छै।
४ नव पदार्थ में चोर कितना साहूकार कितना ? जीव, आश्रव, तो चोर साहूकार दोनूं ही छै। अजीव, पुन्य पाप, वंध ये

चोर साहूकार दोनूं नहीं, संवर, निर्जरा, मोक्ष, ये तीन साहूकार छै।

५ नव पदार्थ मे छांडवा जोग कितना आदरवा जोग कितना। जीव, अजीव, पुन्य, पाप, आश्रव, वंध ये छव तो छांडवा जोग छै, संवर, निर्जरा. मोक्ष, ये तीन आदरवा जोग छै, अने जाणवा जोग नवों ही पदार्थ छै।

६ नव पदार्थ में रूपी कितना अरूपी कितना ? जीव, आश्रव, संवर, निर्जरा, मोक्ष, ये पांच तो अरूपी छै, अजीव रूपी अरूपी दोनूं छै पुन्य, पाप, वंध रूपी छै।

७ नव पदार्थ में एक कितना अनेक कितना ? उ० अजीव टाली आठ पदार्थ तो अनेक छै, अने अजीव एक अनेक दोनूं छै, किणन्याय—धर्मास्ति अधर्मास्ति आकाशास्ति ए तीनूं द्रव्य थकी एक एक ही द्रव्य छै।

॥ लड़ी छव्वीसमी ॥

१ छव द्रव्य में जीव कितना ? अजीव कितना ? एक जीव पांच अजीव छै।

२ छव द्रव्य में रूपी कितना ? अरूपी कितना ? जीव, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाशास्ति, काल, ए पांच तो अरूपी छै, पुद्गल रूपी छै।

३ छव द्रव्य में आज्ञा मांहि कितना ? आज्ञा वाहिर कितना ?

जीव तो आज्ञा मांहि बाहिर दोनूं छै, बाकी पांच आज्ञा मांहि बाहिर दोनूं नहीं।

४ छव द्रव्य में चोर कितना ? साहूकार कितना ? जीव तो चोर साहूकार दोनूं छै, बाकी पांच द्रव्य चोर साहूकार दोनूं नहीं, अजीव छै।

५ छव द्रव्य में सावद्य कितना ? निरवद्य कितना ? एक जीव द्रव्य तो सावद्य निरवद्य दोनूं छै, बाकी पांच द्रव्य सावद्य निरवद्य दोनूं नहीं।

६ छव द्रव्य में एक कितना ? अनेक कितना ? धर्मास्ति अधर्मास्ति, आकाशास्ति, ए तीनों तो एक ही द्रव्य छै, काल, जीव, पुद्गलास्ति ए तीन अनेक छै, इणां का अनन्ता द्रव्य छै।

७ छव द्रव्य में सप्रदेशी कितना ? अप्रदेशी कितना ? एक काल तो अप्रदेशी छै बाकी पांच सप्रदेशी छै।

॥ लड़ी सत्ताइसमी ॥

१ पुन्य धर्म के अधर्म ? दोनूं नहीं। किण न्याय—धर्म अधर्म जीव छै, पुन्य अजीव छै।

२ पाप धर्म के अधर्म ? दोनूं नहीं। किण न्याय—धर्म अधर्म तो जीव छै, पाप अजीव छै।

३ बंध धर्म के अधर्म ? दोनूं नहीं। किण न्याय – धर्म अधर्म तो जीव छै, बन्ध अजीव छै।

४ कर्म अने धर्म एक के दोय ? दोय छै। किण न्याय—कर्म तो अजीव छै, धर्म तो जीव छै।

५ पाप अने धर्म एक के दोय ? दोय छै। किण न्याय—पाप तो अजीव छै, धर्म जीव छै।

६ धर्म अने अधर्मास्ति एक के दोय ? दोय। किण न्याय—धर्म तो जीव छै, अधर्मास्ति अजीव छै।

७ अधर्म अने धर्मास्ति एक के दोय ? दोय। किण न्याय—अधर्म तो जीव छै, धर्मास्ति अजीव छै।

८ धर्मास्ति अने अधर्मास्ति एक के दोय ? दोय। किण न्याय—धर्मास्ति को तो चालवा नो सहाय छै, अने अधर्मास्ति नो थिर रहवा नो सहाय छै।

९ धर्म अने धर्मी एक के दोय ? एक छै। किण न्याय—धर्म जीव का चोखा परिणाम छै।

१० अधर्म अने अधर्मी एक के दोय ? एक छै। किण न्याय—अधर्म जीव का खोटा परिणाम छै।

सोलह सतियों की स्तुति

आदिनाथ आदि जिनवर वन्दी, सफल मनोरथ कीजिये ए ॥
प्रभाते उठि मंगलीक कामे, सोलह सतियोंना नाम लीजिये ए ॥१॥
बाल कुमारी जग हितकारी, ब्राह्मी भरतनी बेनडी ए ॥
घट घट व्यापक अक्षर रूपे, सोलह सती मांही जे वड़ी ए ॥२॥
बाहुबल भगिनी सतीय शिरोमणि सुन्दरी नामे ऋषभ सुता ए ॥
अङ्क सरूपी त्रिभुवन मांहे, जेह अनुपम गुण युता ए ॥३॥
चन्दनबाला बालपणा थी, शीलवन्ती शुद्ध श्राविका ए ॥
उड़दना बाकुला वीरे प्रतिलाभ्या, केवल लही व्रत भाविका ए ॥४॥
उग्रसेन धुआ धारिणी नन्दिनी, राजमती नेमिवल्लभा ए ॥
यौवन वय से काम ने जीती, संयम लेइ देव दुर्लभा ए ॥५॥
पञ्च भरतारी पाण्डव नारी, द्रुपद तनया वखाणीए ए ॥
एक सौ आठे चीर पुराणा, शील महिमा तस जाणिए ए ॥६॥
दशरथ नृपनी नारी निरूपम, कौशल्या कुल चन्द्रिका ए ॥
शील सलौणी राम जनेता, पुण्यतणी प्रणालिका ए ॥७॥
कौशम्बिक ठामे सन्तानिक नामे, राज्य करे रङ्ग राजियो ए ॥
तस घर घरणी मृगावती सती, सुर भवने यश गाजियो ए ॥८॥
सुलसा साची शीले न काची, राची नहीं विषया रसे ए ॥
मुखड़ो जोतां पाप पलाए, नाम लेतां मन उल्लसे ए ॥९॥

राम रघुवंशी तेहनी कामनी. जनक सुता सीता सती ए ॥
जग सहु जाणे धीज करंता, अनल शीतल थयो शील थी ए ॥१०॥
काचे तांतणे चालणी बान्धी, कुवा थकी जल काढियो ए ॥
कलङ्क उतारवा सती सुभद्रा, चम्पा बार उघाड़ियो ए ॥११॥
सुर नर वन्दित शील अखण्डित, शिवा शिव पद गामिनी ए ॥
जेहने नामे निर्मल थइए, बलिहारी तस नामनी ए ॥१२॥
हस्तिनापुरे पाण्डु रायनी, कुन्ता नामे कामिनी ए ॥
पाण्डव माता दशे दशारनी, बहिन पतिव्रता पद्मिनी ए ॥१३॥
शीलवती नामे शील व्रत धारिणी, त्रिविधे तेहने वन्दिए ए ॥
नाम जपता पातक जाये, दर्शने दुरित निकन्दिए ए ॥१४॥
निषधा नगरी नल नरेन्द्रनी, दमयन्ती तस गेहनी ए ॥
संकट पड़तां शीलज राख्यो, त्रिभुवन कीर्ति जेहनी ए ॥१५॥
अनङ्ग अजिता जग जन पूजिता, पुष्पचूला ने प्रभावती ए ॥
विश्व विख्याता कामित दाता, सोलहवीं सती पद्मावती ए ॥१६॥
वीरे भाषी शास्त्र साक्षी, उदयरत्न भाखे मुदा ए ॥
वहाणुं वहंत जे नर भणसी, ते लहसी सुख सम्पदा ए ॥१७॥

—oo—oo—

चेतावनी

चेत चतुर नर कहै तनै सत गुरु, किस विधि तू ललचाना है।
तन धन यौवन सर्व कुटुम्बो, एक दिवस तज जाना है। चे० ॥ १ ॥
मोह माया को बड़ो जाल है, जिसमें तू लोभाना है।
काल आहेरी चोट आकरी, ताक रह्यो नीशाना है। चे० ॥ २ ॥
काल अनादिरो तूंही रे भटक्यो, तो पिण अन्त न आना है।
चार दिनां की देख चान्दनी, जिसमें तू लोभाना है। चे० ॥ ३ ॥
पूर्व भवरा पुण्य योग थी, नरकी देही पाना है।
मास सवा नौ रहा गर्भ में, उन्धै मुख भूलाना है। चे० ॥ ४ ॥
मल मूत्र की अशुचि कोथली, मांहे सांकड़ दीना है।
रुधिर शुक्रनो आहार अपवित्र, प्रथम पणे तै लीना है। चे० ॥ ५ ॥
ऊंट क्रोड सुई सारकी, ताती कर चोभाना है।
तिण सू अष्ट गुणी वेदना गर्भ में, देख्या दुःख असमाना है। चे० ॥६॥
बालपणो थे खेल गवांयो, यौवन में गर्वाना है।
अष्ट प्रहर कीधो मद मस्ती, खोटी लाग लगाना है। चे० ॥ ७ ॥
रंगी चंगी राखत देही, टेढ़ी चाल चलाना है।
आठ पहर कीधो घर धन्धो लग रहा आर्त्तध्याना है। चे० ॥ ८ ॥
मात पिता सुत बहिन भाणजी, तिरिया सूं दिल लीना है।
वे नहीं तेरे तूं नहीं उनका, स्वार्थ लगी संगीना है। चे० ॥ ९ ॥

अर्थ अनर्थ करी धन मेल्यो, घणा सूं वैर वंधाना है।
लक्ष्मी तो तेरे लारै न चलसी, यहां की यहां रह जाना है। चे० ॥१०॥
ऊँचा ऊँचा महल चिणाया, करै घना कारखाना है।
घड़ी एक राखत नहिं घरमें, चालत जाय मशाना है। चे० ॥ ११ ॥
धर्म सेती द्वेष न धरना, परभव सेती डरना है।
चित्त आपनो देख मुसाफिर, करनी सेती तरना है। चे० ॥ १२ ॥
छिन छिन में तेरी आयु घटत है, अञ्जली जैसे झरना है।
कोड़ों यत्न करै वहुतेरा, तो पिण एक दिन मरना है। चे० ॥ १३ ॥
साधु सन्त की सुनी न वाणी, दान सुपात्र न दीना है।
तप जप क्रिया कछू न किधी, नरभव लाभ न लीना है। चे० ॥१४॥
चक्री केशव राजा राणा, इन्द्र सुरों का इन्दा है।
सेठ सेनापति सव ही मानव, पड़्या काल के फन्दा है। चे० ॥ १५ ॥
यौवन गँवाय वूढा होय वैठा, तो पिण समय न आना है।
धर्म रत्न तुझ हाथ न आयो, परभव में पछताना है। चे० ॥ १६ ॥

—※○※—

तेरा द्वार

[स्वामीजी श्री १००८ श्री भिक्षुजी महाराज ने पचीश बोल व चर्चा के जानकार श्रावकों के विशेष ज्ञान के लिये जीवाजीवादि तत्त्वों का विस्तृत विवेचन इस प्रकरण में किया है। धर्म का रहस्य समझाने के लिये दो सौ वर्ष पहले जब्र की प्रेस छापाखाना आदि का सहारा वे लेते नहीं थे और श्रावकों, को भी नहीं मिलता था तब साधारण के बोध गम्य भाषा में बड़ी ही विद्वता व दूरदर्शिता के साथ इसका संकलन कर श्रावक वर्ग में प्रचार किया।

इसका अध्ययन अच्छी तरह समझकर कर लेने से बहुत सी बातें हृदयङ्गम हो जायगी और जैन धर्म की गहन बातें जो सूत्र सिद्धान्तों में भरी हुई हैं उसे समझना आसान होगा अतः प्रत्येक पाठक को इन्हें अच्छी तरह समझ कर धारण कर लेना चाहिये।]

१ मूल १, दृष्टान्त २, कुण ३, आत्मा ४, जीव ५, अरूपी ६, निरवद्य ७, भाव ८, द्रव्य गुण पर्याय ९, द्रव्यादिक १०, आज्ञा ११, ज्ञेय १२, तलाव १३, ए तेराद्वार जाणवा।

प्रथम मूल द्वार

जीव ते चेतना लक्षण अजीव ते अचेतना लक्षण, पुन्य ते शुभ कर्म, पाप ते अशुभ कर्म, कर्म ग्रहै ते आश्रव, कर्म रोकै ते

संवर, देशथकी कर्म तोड़ी देशथी जीव उज्ज्वल थाय ते निर्जरा, जीव सङ्घाते शुभाशुभ कर्म बन्ध्या ते बन्ध, समस्त कर्मों से मुकावै ते मोक्ष।

॥ इति प्रथम द्वार सम्पूर्णम् ॥

॥ दूसरो दृष्टान्त द्वार ॥

जीव चेतन का २ दोय भेद—

एक सिद्ध, दूजो संसारी, सिद्ध कर्मां रहित छै, संसारी कर्मां सहित छै। तिणरा अनेक भेद छै। सूक्ष्म अने बादर, त्रस ने स्थावर, सन्नी अने असन्नी, तीन वेद, च्यार गति, पांच जाति, छव काय, चौदे भेद जीवनां, चौवीस दण्डक, इत्यादिक अनेक भेद जाणवा। चेतन गुण ओलखवानें सोनारो दृष्टान्त कहै छै। जिम सोनारो गहणो भांजी भांजी ने और और आकारे घड़ावे तो आकार नो विनाश थाय पण सोनारो विनाश नहीं, तैसे कर्मों का उदय थी जीव की पर्याय पलटै पण मूल चेतन गुण को विनाश नहीं।

अजीव अचेतन तिणरा पांच भेद—

धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाशास्ति, काल, पुद्गलास्ति। तिणमें च्यारां की पर्याय पलटे नहीं एक पुद्गलास्ति की पर्याय पलटे ते ओलखवाने सोनारो दृष्टान्त कहे छै— जिम कोई सोनारो गहणो भांजी भांजी और और आकारे घड़ावे तो आकारनो विनाश होय, सोनारो विनाश नहीं, ज्यं पुद्गल की पर्याय

पलटे पण पुद्गल गुण को विनाश नहीं। पुन्य ते शुभ कर्म पाप ते अशुभ कर्म। ते पुन्य पाप ओलखवानें पथ्य अपथ्य आहार नो दृष्टान्त कहे छै। कदेक जीव के पथ्य आहार घटै और अपथ्य आहार वधै, तो जीव के निरोगपणो घटै अने सरोगपणो बधै। कदे जीव रै अपथ्य आहार घटै पथ्य वधै तव जीव रै सरो-गपणो घटै अने निरोगपणो वधै। पथ्य अपथ्य दोनूं घट जाय तो प्राणी मरण पामे। ज्यों जीव के पुन्य घटै अरु पाप बधै तो सुख घटै अने दुख वधै। कदे जीव रै पाप घटै अरु पुन्य वधै तो सुख वधै अने दुख घटै। पुन्य पाप दोनूं क्षय होय तो जीव मोक्ष पामे।

कर्म ग्रहे ते आश्रव ते ओलखवाने तीन दृष्टान्त पांच कथण कहे छै।

१ प्रथम कथन
   १ तलाव रे नालो ज्यों जीव रे आश्रव।
   २ हवेली के बारणो ज्यों जीव रे आश्रव।
   ३ नाव के छिद्र ज्यों जीव रे आश्रव।
२ दूजो कथन
   १ तलाव अने नालो एक ज्यूं जीव आश्रव एक।
   २ हवेली बारणो एक ज्यों जीव आश्रव एक।
   ३ नाव अने छिद्र एक ज्यूं जीव आश्रव एक।
३ कर्म आवै ते आश्रव ते ओलखवाने तीजो कथण कहै छै।
   १ पाणी आवै ते नालो, ज्यों कर्म आवै ते आश्रव

२ मनुष्य आवै ते बारणो, ज्यों कर्म आवै ते आश्रव।

३ पाणी आवै ते छिद्र, ज्यों कर्म आवे ते आश्रव।

४ इम कह्यां थकां कोई कर्म अने आश्रव एक सरधै तेहनें दोय सरधावा ने चौथी कथण कहै छै।

१ पाणी अने नालो दोय, ज्यों कर्म अने आश्रव दोय।

२ मनुष्य अने बारणो दोय, ज्यों कर्म अने आश्रव दोय।

३ पाणी छिद्र दोय, ज्यों कर्म अने आश्रव दोय।

५ विशेष ओलखवाने पांचमूं कथण कहै छै।

१ पाणी आवै ते नालो, पण पाणी नालो नहीं। ज्यों कर्म आवै ते आश्रव, पण कर्म आश्रव नहीं।

२ मनुष्य आवै ते बारणो, पण मनुष्य बारणो नहीं। ज्यों कर्म आवै ते आश्रव पण कर्म आश्रव नहीं।

३ पाणी आवै ते छिद्र, पण पाणी छिद्र नहीं। ज्यों कर्म आवै ते आश्रव पण कर्म आश्रव नहीं।

कर्म रोकै ते संवर ते ओलखवाने तीन दृष्टान्त कहै छै।

१ तलाव रो नालो रूंधै, ज्यों जीव रे आश्रव रूंधै ते संवर।

२ हवेली रो बारणो रूंधै, ज्यों जीव रे आश्रव रूंधै ते संवर।

३ नाव रे छिद्र रूंधै, ज्यूं जीव रे आश्रव रूंधै ते संवर।

देशथकी कर्म तोड़ी जीव देश थी उज्ज्वल थाय ते निर्जरा ओलखवाने तीन दृष्टान्त कहै छै।

१ तालाव रो पाणी मोरियादिक करी ने काढ़ै, ज्यों जीव भला भाव प्रवर्तावी ने कर्म रूपियो पाणी काढ़ै ते निर्जरा।
२ हवेली रो कचरो पूंजी ने काढ़ै, ज्यों भला भाव प्रवर्तावी ने जीव कर्म रूपियो कचरो काढ़ै ते निर्जरा।
३ नाव को पाणी उलेची २ ने काढ़ै, ज्यों जीव भला भाव प्रवर्तावी ने कर्म रूपियो पाणी काढ़ै ते निजरा।

जीव संघाते कर्म बंधिया हुया ते बंध, ते ओलखवाने छव बोल कहै छै।

१ पहिले बोलै—कहो स्वामीजी, जीव अने कर्म नी आदि छै ए बात मिले अथवा न मिले? गुरू बोल्याः—न मिले। प्रश्न—क्यूं न मिले, गुरू बोल्याः—ए उपनो नहीं।
२ दूजै बोलै—कहो स्वामीजी, पहली जीव और पाछै कर्म ए बात मिलै? गुरू बोल्याः—नहीं मिलै। प्रश्न—क्यों न मिलै, उ०—कर्म बिना जीव रह्यो कहां, मोक्ष गयो पाछो आवै नहीं, यों न मिलै।
३ तीजै बोलै—कहो स्वामीजी, पहली कर्म अने पछै जीव ए बात मिलै? गुरू कहैः—नहीं मिलै। प्रश्न—क्यों न मिलै?

गुरू कहैः—कर्म कियां बिना हुवै नहीं; तो जीव विना कर्म कौण किया।

४ चौथे बोले—कहो स्वामीजी, जीव कर्म एक साथ उपना ए बात मिलै ? गुरू कहैः—न मिलै। प्र०—किणन्याय ? उ०—जीव, कर्म यां दोयां ने उपजावन वालो कौण।

५ पांचमें बोलै—जीव कर्म रहित छै ए वात मिलै ? गुरू कहै, न मिलै। प्रश्न—किणन्याय ? उ०—ए जीव कर्म रहित होवै तो करणी करवा री खप (चूंप) कोण करै ? मुक्ति गयो पाछो आवै नहीं।

६ छठै बोलैः—कहो स्वामीजी, जीव अने कर्म नो मिलाप किण विधि थाय छै ? गुरू कहै, अपच्छाने पूर्व पण अनादि काल से जीव कर्मरो मिलाप चल्यो जाय छै।

बन्ध रा च्यार भेद छैः—

प्रकृति वन्ध कर्म स्वभाव रे न्याय १, स्थिति वन्ध काल व्यवहार रे न्याय २, अनुभाग बंध रस विपाक रे न्याय ३, प्रदेश वन्ध जीव कर्म लोली भूत रे न्याय ४।

ते ओलखवाने तीन दृष्टान्त कहै छै।

१ तेल अने तिल लोली भूत, ज्यों जीव कर्म लोली भूत।
२ घृत दूध लोली भूत, ज्यों जीव कर्म लोली भूत।
३ धातू माटी लोली भूत, ज्यों जीव कर्म लोली भूत।

समस्त कर्मा से मूकावे ते मोक्ष ते ओलखवाने तीन दृष्टांत कहै छै

१ घाणीयांदिक नूं उपाय करी तेल खल रहित होवै, ज्यों तप सञ्जमादि करी जीव कर्म रहित होवै—ते मोक्ष।

२ झेरणादिक को उपाय करी घृत छाछ रहित होवै, ज्यों तप सञ्जम करी जीव कर्म रहित होवै—ते मोक्ष।

१ अग्नियादिंकनूं उपाय करी धातू माटी अलग होवै, ज्यों तप सञ्जम करी जीव कर्म रहित होवै ते मोक्ष।

॥ तीजो कौण द्वार कहै छै ॥

जीव चेतन छव द्रव्यां में कौण ? नव पदार्थों में कौण ? छव में द्रव्यां में तो एक जीव, नव पदार्थों में पांच—जीव १, आश्रव २, संवर ३, निर्जरा ४, मोक्ष ५।

अजीव—अचेतन छव में कौण ? नव में कोण ? छव में ५ नव में ४। छव द्रव्यां में तो धर्मास्ति १, अधर्मास्ति २, आकाशास्ति ३, काल ४, पुद्गलास्ति ५। नव पदार्थों में अजीव १, पुन्य २, पाप ३, बन्ध ४।

पुन्य ते शुभ कर्म—छव में कौण ? नव में कौण ? छव में एक पुद्गल। नव में तीन, अजीव १, पुन्य २, बन्ध ३।

पाप ते अशुभ कर्म—छव में कौण नव में कौण ? छव में एक पुद्गल। नव में तीन, अजीव १, पाप २, बन्ध ३।

कर्म ग्रह ते आश्रव—छव में कौण नव में कौण ? छव में जीव। नव में जीव १, आश्रव २।

कर्म रोकै ते संवर—छव में कौण नव में कौण ? छव में जीव। नव में जीव १, संवर २।

देशथी कर्म तोड़ी देशथी जीव उज्ज्वल थाय ते निर्जरा—छव में कौण नव में कौण ? छव में जीव। नव में जीव १ निर्जरा २।

वन्ध छव में कौण नव में कौण ? छव में पुद्गल। नव में अजीव १ पुन्य २ पाप ३ वन्ध ४।

मोक्ष छव में कौण नव में कौण ? छव में जीव। नव में जीव १ मोक्ष २।

चालै ते कौण, चालवानो सहाय किणरो ? चालै ते जीव पुद्गल, अने सहाय धर्मास्तिकायनो।

थिर रहै ते कौण, थिर रहवानो सहाय किणरो ? थिर रहै जीव पुद्गल, सहाय अधर्मास्तिकायनो।

वसे ते कौण, भाजन किणरो ? वसे ते जीव पुद्गल, भाजन आकाशास्तिकायनो।

वरतै ते कौण, वरतै किन ऊपर ? वरतै ते काल, अने वरतै जीव अजीव ऊपर।

भोगवै ते कौण, अने भोग में आवै ते कौण ? भोगवै ते जीव। भोग में आवै ते पुद्गल—दोय प्रकारे एक तो शब्दादिक पणै दूजो कर्म पणै।

कर्मां रो करता कौण ? कीधा होवै ते कौण ? करता तो जीव कीधा हुवा ते कर्म।

कर्मां रो उपाय ते कौण ? उपना ते कौण ? उपाय तो जीव उपना ते कर्म।

कर्मां ने लगावै ते कौण ? लाग्या हुवा ते कौण ? लगावै ते जीव, लागै ते कर्म।

कर्मां ने रोकै ते कौण ? रुक्या ते कौण ? रोकै तो जीव, रुक्या ते कर्म।

कर्मां ने तोड़ै ते कोन ? तूट्या ते कौन ? तोड़ै ते जीव, तूट्या ते कर्म।

कर्मां ने बांधै ने कौण ? बंध्या ते कौण ? बांधै ते जीव, बंधिया ते कर्म।

कर्मां ने खपावै ते कौण ? अने क्षय थया ते कौण ? खपावै ते जीव, क्षय थया ते कर्म।

इति तृतीय द्वारम्।

॥ अथ चौथो आत्म द्वार कहै छै ॥

जीव चेतन ते आत्मा छै, अनेरो नहीं।

अजीव अचेतन आत्मा नहीं, अनेरो छै।

अजीव आत्मारे काम आवै छै, पण आत्मा नहीं, कौण कौण काम आवै ते कहै छै—

धर्मास्तिकाय अवलम्बने चालै छै।

अधर्मास्तिकाय अवलम्बने स्थिर रहै छै।

आकाशास्तिकाय अवलम्बने बसै छै।

काल अवलम्बने कार्य करै छै।

पुद्गल खाय छै, पीवै छै, पहरै छै, ओढै छै, इत्यादि अनेक प्रकारे आत्मारे काम आवै छै, पण आत्मा नहीं।

पुन्यते शुभ कर्म, आत्मारै शुभ पणैं उदय आवै छै, पण आतमां नहीं।

पापते अशुभ कर्म, आत्मारै अशुभ पणै उदय आवै छै, पण आत्मा नहीं।

शुभाशुभ कर्म ग्रहै ते आश्रव आत्मा छै, अनेरो नहीं।

कर्म रोकै ते संबर आत्मा छै, अनेरो नहीं।

देश थकी कर्म तोड़ी देश थकी जीव उज्ज्वल थायते निर्जरा आत्मां छै, अनेरो नहीं।

जीव संघाते कर्म बंधाणा ते बंध आत्मा नहीं, अनेरो छै। आत्मा ने बांध राखो छै, पण आत्मा नहीं।

समस्त कर्मां से मूकावै ते मोक्ष, आत्मा छै—अनेरो नहीं।

अथ पांचमूं जीवद्वार कहै छै।

जीव ते चेतन। तिण जीवने जीव कहिजे, जीवने आश्रव कहिजे, जीवने संवर कहिजे, जीव ने निर्जरा कहिजे, जीवने मोक्ष कहिजे।

अजीव ते अचेतन। तिणने अजीव कहिजे, पुन्य कहिजे, पाप कहिजे, बन्ध कहिजे।

पुन्यते शुभ कर्म, तेहने पुन्य कहिजे, तेहने अजीव कहिजे, तेहने वन्ध कहिजे।

पाप ते अशुभ कर्म। तेहने पाप कहिजे, अजीव कहिजे, बन्ध कहिजे।

कर्म ग्रहे ते आश्रव कहिजे; तेहने जीव कहिजे। कर्म रोके ते संवर कहिजे, जीव कहिजे।

देशथकी कर्मतोड़ी देशथकी जीव उज्ज्वल थाय तेहने निर्जरा कहिजे, जीव कहिजे।

जीव संघाते कर्म बंधाणा ते बंध कहिजे अजीव कहिजे।

समस्त कर्म मुकावे ते मोक्ष कहिजे; जीव कहिजे। हिवे एहनी ओलखणा न्याय सहित कहै छै।

जीवने जीव किणन्याय कहिजे? गये काल में जीव छो, वतमान काल में जीव छै, आगामी काल में जीव को जीव रहसी इणन्याय।

अजीवने अजीव किणन्याय कहिजे? गये काल में अजीव छो, वर्तमान काल में अजीव छै, आगामी काले अजीव को अजीव रहसी।

पुन्य ने अजीव किणन्याय कहिजे? पुन्य ते शुभ कर्म छै, कर्म ते पुद्गल छै, पुद्गल ते अजीव छै।

पाप ने अजीव किणन्याय कहिजे? पाप ते अशुभ कर्म छै, कर्म ते पुद्गल छै, पुद्गल ते अजीव छै।

आश्रव ने जीव किणन्याय कहिजे ? आश्रव तो कर्म ग्रहै छै, कर्मांरो करता छै, कर्मांरो उपाय छै, उपाय ते जीव ही छै।

१ मिथ्यात्व आश्रव ने जीव किणन्याय कहिजे ? विपरीत सरधान ते मिथ्यात्व आश्रव जीवरा परिणाम छै।

२ अव्रत आश्रव ने जीव किणन्याय कहिजे ? अत्याग भाव ते जीवरी आशा वांछा, अव्रत आश्रव छै। ते जीवरा परिणाम छै।

३ प्रमाद आश्रव ने जीव किणन्याय कहिजे ? अनुत्साह पणो ते प्रमाद आश्रव छै, ते जीवरा परिणाम छै।

४ कषाय आश्रव ने जीव किणन्याय कहिजे ? कषाय आत्मा कही छै, कषाय ते जीवरा परिणाम छै, ते जीव छै।

५ जोग आश्रव ने जीव किणन्याय कहिजे ? जोग आत्मा कही छै, जोग ते जीवरा परिणाम छै। तीनूं ही जोगांरो व्यापार जीवरो छै।

संवर ने जीव किणन्याय कहिजे ? सामायिक, पच्चखाण, संयम, संवर, विवेक, विउसग ए छऊं आत्मा कही छै, वलि चारित्र आत्मा कही छै। चारित्र जीवरा परिणाम छै, इणन्याय।

निर्जरा ने जीव किणन्याय कहिजे ? भला भाव प्रवर्तावीने जीव देशथी उज्ज्वल हुवै ते जीव छै।

बन्ध ने अजीव किणन्याय कहिजे ? बन्ध ते शुभ, अशुभ कर्म छै, कर्म ते पुद्गल, ते अजीव छै।

मोक्ष ने जीव किणन्याय कहिजे ? समस्त कर्म मुकावे ते

मोक्ष कहिजे, निर्वाण कहिजे, सिद्ध भगवान कहिजे। सिद्ध भगवान तो जीव छै, इणन्याय मोक्ष ने जीव कहिजे।

॥ इति पञ्चम द्वारम् ॥

॥ अथ छट्ठो रूपी अरूपी द्वार कहै छै ॥

जीव अरूपी छै। अजीव रूपी, अरूपी दोनूं छै। पुन्य रूपी छै। पाप रूपी छै। आश्रव अरूपी छै। संबर अरूपी छै। निर्जरा अरूपी छै। वन्ध रूपी छै। मोक्ष अरूपी छै।

हिवे एहनी ओलखना कहै छैः—

जीव नें अरूपी किणन्याय कहिजे ? छव द्रव्य में जीव ने अरूपी कह्यो छै, पांच वर्ण पावे नहीं। अजीव ने अरूपी, रूपी दोनूं किणन्याय कहिजे ? अजीव का पांच भेद। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाशास्ति, काल, पुद्गल। इण में च्यार तो अरूपी छै। यामें पांच वर्ण पावे नहीं। एक पुद्गल रूपी छै।

पुन्य ने रूपी किणन्याय कहिजे ? पुन्य तो शुभ कर्म छै, कर्म तो पुद्गल छै, पुद्गल ते रूपी छै।

पाप ने रूपी किणन्याय कहिजे ? पाप ते अशुभ कर्म छै, कर्म ते पुद्गल छै, पुद्गल ते रूपी छै।

आश्रव ने अरूपी किणन्याय कहिजे ? कृष्णादिक छऊं भाव लेश्या अरूपी कही छै।

मिथ्यात्व आश्रव ने अरूपी किणन्याय कहिजे ? मिथ्या दृष्टि अरूपी कही छै ।

अव्रत आश्रव ने अरूपी किणन्याय कहिजे ? अत्याग भाव परिणाम जीवरा अरूपी कह्या छै ।

प्रमाद आश्रव ने अरूपी किणन्याय कहिजे ? अनुत्साह पणो प्रमाद आश्रव छै, जीवरा परिणाम छै, ते जीव छै, जीव ते अरूपी छै ।

कषाय आश्रव ने अरूपी किणन्याय कहिजे ? श्रीठाणांग दश में ठाणे जीव परिणामीरा दश भेदां में कषाय परिणामी कही छै, अने ज्ञान, दर्शन, चारित्र परिणामी कह्या छै । ए जीव छै । तिम कषाय परिणामी जीव छै । कषाय पणे परिणामे, ते कषाय परिणामी आश्रव छै, जीव छै, जीव ते अरूपी छै ।

जोग आश्रव ने अरूपी किणन्याय कहिजे ? तीनां ही जोगांरो उठान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम अरूपी छै ।

संवर ने अरूपी किणन्याय कहिजे ? अठारे पाप ठाणारो विरमण अरूपी छै ।

निर्जरा ने अरूपी किणन्याय कहिजे ? कर्म तोड़वारो बल, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम, अरूपी छै ।

वन्ध ने रूपी किणन्याय कहिजे ? बन्ध ते शुभाशुभ कर्म छै, कर्म ते पुद्गल छै, पुद्गल ते रूपी छै ।

मोक्ष ने अरूपी किणन्याय कहिजे ? समस्त कर्मां ने मुकावे

ते जीव छै। तेहने मोक्ष कहिजे, निर्वाण कहिजे, सिद्ध भगवान कहिजे। सिद्ध भगवान ते अरूपी छै।

॥ इति छठो द्वारम् ॥

॥ अथ सातमूं सावद्य निरवद्य द्वार कहै छै ॥

जीव तो सावद्य, निरवद्य दोनूं छै। अजीव सावद्य, निरवद्य दोनूं नहीं। पुन्य, पाप सावद्य, निरवद्य दोनूं नहीं, अजीव छै। आश्रव का पांच भेद—मिथ्यात्व आश्रव, अव्रत आश्रव, प्रमाद आश्रव, कषाय आश्रव, ए चार तो सावद्य छै। अशुभ जोग सावद्य छै, शुभ जोग निरवद्य छै। इणन्याय आश्रव सावद्य, निरवद्य दोनूं छै। संवर निरवद्य छै। निर्जरा निरवद्य छै। बन्ध सावद्य, निरवद्य दोनूं नहीं। अजीव छै। मोक्ष निरवद्य छै।

॥ इति सप्तम् द्वारम् ॥

॥ अथ आठमूं भाव द्वार कहै छै ॥

भाव पांच—उदय भाव १, उपशम भाव २, क्षायक भाव ३, क्षयोपशम भाव ४, परिणामिक भाव ५।

उदय तो आठ कर्मनो। अने उदय निपन्नरा दोय भेद—जीव उदय निपन्न १, दूजो जीवरे अजीव उदय निपन्न २। तिणमें जीव उदय निपन्नरा ३३ तेतीस भेद, ते कहै छै। चार गति ४, छव काय १०, छव लेश्या १६, चार कषाय २०, तीन वेद ए २३

मिथ्यात्वी २४, अव्रती २५, असन्नी २६, अनाणी २७, आहारता २८, संसारता २९, असिद्ध ३०, अकेवली ३१, छद्मस्थ ३२, संजोगी ३३।

हिवे जीवरे अजीव उदय निपन्नरा, तीस भेद—ते कहै छै पांच शरीर, पांच शरीर रे प्रयोगे परिणम्यां पांच द्रव्य, पांच वर्ण, दोय गंध, पांच रस, आठ स्पर्श—ये तीस।

उपशमरा दोय भेद—एक तो उपशम दूजो उपशम निपन्न भाव। उपशम तो एक मोह कर्मरो होय। उपशम निपन्नरा दोय भेद—उपशम समकित, उपशम चारित्र।

क्षायकरा दोय भेद—एक तो क्षायक दूजो क्षायक, निपन्न। क्षायक तो आठ कर्मको होय, अने क्षायक निपन्नरा तेरा भेद, ते कहै छै—

केवल ज्ञान १, केवल दर्शन २, आत्मिक सुख ३, क्षायक सम्यक्त्व ४, क्षायक चारित्र ५, अटल अवगाहना ६, अमुर्तिक पणो ७, अगुरु लघु पणो ८, दान लब्धि ९, लाभ लब्धि १०, भोग लब्धि ११, उपभोग लब्धि १२, वीर्य लब्धि १३।

क्षयोपशमरा दोय भेद—एक तो क्षयोपशम १, दूजो क्षयोपशम निपन्नभाव २। क्षयोपशम तो चार कर्म को ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीय, अन्तराय। अने क्षयोपशम निपन्न भावरा बत्तीस बोल, ते कहै छै—

ज्ञानावर्णीय कर्मरो क्षयोपशम होय तो आठ बोल पामें:—केवल बरजी चार ज्ञान, तीन अज्ञान, एक भणवो गुणवो।

दर्शनावर्णीय कर्मरो क्षयोपशम होय तो आठ बोल पामें:— पांच इन्द्री, तीन दर्शन, केवल बरजी।

मोहनीय कर्मरो क्षयोपशम होय तो आठ बोल पामें:—चार चारित्र, एक देश व्रत, तीन दृष्टि।

अन्तराय कर्मरो क्षयोपशम होवे तो आठ बोल पामें:— पांच लब्धि, तीन वीर्य।

परिणामिकरा दोय भेद—सादिया परिणामी १, अनादिया परिणामी २। अनादिया परिणामिकरा दश भेद। तिणमें छव द्रव्य, धर्मास्ति आदि, सातमूं लोक, आठमूं अलोक नवमूं भवी, दसमूं अभवी। अने सादिया परिणामीरा अनेक भेद जाणवा। गाम, नगर, गड़ा, पहाड़, पर्वत, पाताल, समुद्र, द्वीप भुवन, विमान इत्यादि अनेक भेद आदि सहित परणामिकरा जाणवा—

जीव आसरे जीव परिणामिकरा दश भेद। ते कहै छै—

गति परिणामी १, इन्द्रिय परिणामी २, कषाय परिणामी ३, लेश्या परिणामी ४, जोग परिणामी ५, उपयोग परिणामी ६, ज्ञान परिणामी ७, दर्शन परिणामी ८, चारित्र परिणामी ९, वेद परिणामी १०।

हिवे जीव आसरे अजीव परिणामीरा दश भेद कहै छै:—

बंधन परिणामी १, गई परिणामी २, संठाण परिणामी ३, भेद परिणामी ४, वर्ण परिणामी ५, गन्ध परिणामी ६, रस परिणामी ७, स्पर्श परिणामी ८, अगुरु लघु परिणामी ९, शब्द परिणामी

१०। जीव में भाव पावे पांचूं ही। अजीव पुन्य पाप वन्ध में भाव एक परिणामिक।

आश्रव भाव दोय—उदय, परिणामिक।

संवर भाव चार, उदय वरजी ने।

निर्जरा भावः—तीन शम क्षायक, क्षयोप, परिणामिक।

मोक्ष भाव दोयः—क्षायक, परिणामिक।

इति अष्टम द्वारम्।

॥ अथ नवमूं द्रव्य, गुण, पर्याय, द्वार कहै छै ॥

द्रव्य तो जीव असंख्य प्रदेशी। गुण आठ—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य, उपयोग, सुख, दुख। एक एक गुणांरी अनन्त अनन्त पर्याय।

ज्ञाने करी अनन्ता पदार्थ जाणे, तिणसूं अनन्ती पर्याय।

दर्शने करी अनन्ता पदार्थ सरधे. तिणसूं अनन्ती पर्याय।

चारित्र थी अनन्त कर्म प्रदेश रोके, तिणसूं अनन्ती पर्याय।

तपकरी अनन्त कर्म प्रदेश तोड़े, तिणसूं अनन्ती पर्याय।

वीर्यनी अनन्ती शक्ति, तिणसूं अनन्त पर्याय।

उपयोग थी अनन्त पदार्थ जाणे, देखे, तिणसूं अनन्ती पर्याय।

सुख अनन्त पुन्य प्रदेशसूं अनन्त पुद्गलिक सुख वेदै, तिणसूं अनन्ती पर्याय। वलि अनन्त कर्म प्रदेश अलग हुयां थी अनन्त आत्म सुख प्रगटे, तिणसूं अनन्ती पर्याय।

दुख, अनन्त पाप प्रदेशसं अनन्त दुख वेदै, तिणसूं अनन्ती पर्याय।

अजीव ना पांच भेदः—धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाशास्ति, काल, पुद्गलास्ति। यांको द्रव्य, गुण, पर्याय कहे छै—

द्रव्य तो एक धर्मास्ति। गुण चालवानो साम्ह। पर्याय अनन्त पदार्थने चालवानो सहाय, तिणसूं अनन्त पर्याय।

द्रव्य तो एक अधर्मास्ति। गुण थिर रहवा नो सहाय। पर्याय अनन्ता पदार्थ ने थिर रहवानो साम्ह, तिणसूं अनन्त पर्याय।

द्रव्य तो एक आकाशास्ति। गुण भाजन। पर्याय अनन्त पदार्थां नो भाजन तिणसूं अनन्त पर्याय।

द्रव्य तो काल। गुण वर्त्तमान। पर्याय अनन्ता पदार्थां पर वरत तिणसूं अनन्त पर्याय।

द्रव्य तो एक पुद्गल। गुण अनन्त गले, अनन्त मिले, तिणसूं अनन्त पर्याय।

द्रव्य तो पुन्य। गुण जीवके शुभ पणे उदय आवे, पर्याय अनन्त प्रदेश, शुभ पणे उदय आवे, सुख करे, तिणसूं अनन्त पर्याय।

द्रव्य तो पाप। गुण जीवरं अनन्त प्रदेश, अशुभ पणे उदय आवे, अनन्त दुख करे, तिणसूं अनन्त पर्याय।

द्रव्य तो आश्रव। गुण कर्म ग्रहवा नो। पर्याय अनन्ता कर्म प्रदेश ग्रहे तिणसूं अनन्ती पर्याय।

द्रव्य तो संवर। गुण कर्म रोकवारो। पर्याय अनन्ता कर्म प्रदेश रोके, तिणसूं अनन्ती पर्याय।

द्रव्य तो निर्जरा। गुण देश थकी, कर्म प्रदेश तोड़ी देश थी जीव उजलो थाय। पर्याय अनन्त कर्म प्रदेश तोड़े, तिणसूं अनन्ती पर्याय।

द्रव्य तो बन्ध। गुण जीव ने बांध राखवा रो। पर्याय अनन्ता कर्म प्रदेश करी बांधे, तिणसूं अनन्ती पर्याय।

द्रव्य तो मोक्ष। गुण आत्मिक सुख। पर्याय अनन्त कर्म प्रदेश क्षय हुआं अनन्त सुख प्रगटे, तिणसूं अनन्ती पर्याय।

॥ इति नवम् द्वारम् ॥

॥ अथ दशमूं द्रव्यादिकरी ओलखना द्वार कहै छै ॥

जीव ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थकी अनन्ता द्रव्य, खेत्र थी लोक प्रमाणे, काल थकी आदि अन्त रहित, भाव थी अरूपी, गुण थी चेतन गुण।

अजीव ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थकी अनन्ता द्रव्य, खेत्र थी लोकालोक प्रमाणे, काल थकी आदि अन्त रहित, भाव थी रूपी, अरूपी दोनूं, गुण थकी अचे-तन गुण।

पुन्य ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थकी अनन्ता द्रव्य, खेत्र थकी जीवां कने, काल थकी आदि अन्त सहित, भाव थकी रूपी, गुण थकी जीव के शुभ पणे उदय आवे।

पाप ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थकी अनन्ता द्रव्य, खेत्र थी जीवाँ कने, काल थकी आदि अन्त सहित, भाव थकी रूपी, गुण थकी जीव रे अशुभ पणे उदय आवे ।

आश्रव ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थकी अनन्ता द्रव्य, खेत्र थी जीवां कने, काल थकी रा तीन भेद—एकेक आश्रव री आदि नहीं, अन्त नहीं । ते अभव्य आसरी; एकेक आश्रवरी आदि नहीं पण अन्त छै ते भव्य आसरी। एकेक आश्रव री आदि छै, अन्त छै। ते पड़वाई आसरी । तेहनी स्थिति जघन्य अन्तर मुहूर्त, उत्कृष्टी देश ऊणो अर्ध पुद्गल परावर्तन । भाव थकी अरूपी । गुण थकी कर्म ग्रहवा नो गुण ।

संवर ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थकी तो असंख्याता द्रव्य, खेत्र थी जीवां कने, काल थकी आदि अन्त रहित, भाव थी अरूपी, गुण थकी कर्म रोकवा रो गुण ।

निर्जरा ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थकी अकाम निर्जरा का तो अनन्ता द्रव्य, सकाम निर्जरा का असंख्याता द्रव्य, खेत्र थी जीवां कने, काल थकी आदि अन्त रहित, भाव थकी अरूपी, गुण थकी कर्म तोड़वा रो गुण ।

बन्ध ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थी अनन्ता द्रव्य, खेत्र थकी जीवां कने, काल थकी आदि

अन्त सहित, भाव थकी रूपी, गुण थकी कर्म बांध राखवो।

मोक्ष ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थकी अनन्ता द्रव्य, खेत्र थकी जीवां कने, काल थकी एकेक सिद्धांरी आदि अन्त नहीं, एकेक सिद्धांरी आदि छै पण अन्त नहीं, भाव थकी अरूपी, गुण थकी आत्मिक सुख।

धर्मास्तिकाय ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थकी एक द्रव्य, खेत्र थी लोक प्रमाणे काल थकी आदि अन्त रहित, भाव थकी अरूपी, गुण थकी जीव पुद्गल ने चालवा रो साम्फ।

अधर्मास्तिकाय ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थकी एक द्रव्य, खेत्र थी लोक प्रमाणे, काल थकी आदि अन्त रहित, भाव थकी अरूपी, गुण थकी जीव पुद्गल ने थिर रहवा नो सहाय।

आकाशास्तिकाय ने पांचां बोलां करी ओलखीजे: —

द्रव्य थकी एक द्रव्य, खेत्र थकी लोक अलोक प्रमाणे, काल थकी आदि अन्त रहित, भाव थकी अरूपी, गुण थकी भाजन गुण।

काल ने पांचा बोलां करी ओलखीजे।—

द्रव्य थकी अनन्ता द्रव्य, खेत्र थी अढ़ाई द्वीप प्रमाणे, काल थकी आदि अन्त रहित, भाव थकी अरूपी, गुण थकी वर्तमान गुणं।

पुद्‌गलास्तिकाय ने पांचां बोलां करी ओलखीजे:—

द्रव्य थकी अनन्ता द्रव्य, खेत्र थकी लोक प्रमाणे, काल थकी आदि अन्त सहित, भाव थकी रूपी, गुण थकी गले मले।

॥ इति दशम द्वारम् ॥

॥ अथ एकादशमूं आज्ञा द्वार कहै छै ॥

जीव आज्ञा मांहि, बाहर दोनूं छै। ते किणन्याय? सावद्य कर्तव्य आसरी आज्ञा बाहर छै अने निरवद्य कर्तव्य आसरी आज्ञा मांहि छै। अजीव आज्ञा मांहि के बाहर? अजीव आज्ञा मांहि, बाहर दोनूं नहीं, ते किणन्याय? अजीव छै, अचेतन छै, जड़ छै।

पुन्य, पाप, बन्ध, ए तीनूं आज्ञा मांहि, बाहर नहीं, अजीव छै।

आश्रव आज्ञा मांहि, बाहर दोनूं छै, किणन्याय? आश्रव ना पांच भेद—मिथ्यात्व १, अव्रत २, प्रमाद ३, कषाय ए चार तो आज्ञा बाहर छै। जोग आश्रव का दोय भेद—शुभ जोग वर्तता निर्जरा हुवे, तिण अपेक्षाय आज्ञा मांहि छै। अशुभ जोग आज्ञा बाहर छै।

संवर आज्ञा मांहि छै, ते किणन्याय? संवर थी कर्म रुके, ते श्री वीतराग की आज्ञां मांहि छैं।

निर्जरा आज्ञा मांहि छै, ते किणन्याय? कर्म तोड़वारा उपाय श्री वीतराग की आज्ञा में छै।

मोक्ष आज्ञा मांहि छै, ते किणन्याय? सकल कर्म खपावारी श्री वीतराग की आज्ञा छै।

॥ इति एकादशम् द्वारम् ॥

॥ अथ बारमूं ज्ञेय द्वार कहै छै ॥

जीव ने जीव जाणवो। अजीव ने अजीव जाणवो। पुन्य ने पुन्य जाणवो। पाप ने पाप जाणवो। आश्रव ने आश्रव जाणवो। संवर ने संवर जाणवो। निर्जरा ने निर्जरा जाणवी। बन्ध ने बन्ध जाणवो। मोक्ष ने मोक्ष जाणवो। ये नव पदार्थ जाणवा योग कह्या छै। इणां में आदरवा जोग तीन संवर १, निर्जरा २, मोक्ष ३। बाकी छः छांडवा जोग छै।

जीव ने छांडवा जोग किण न्याय कहिजे ? आपरा जीव को भाजन करी किणी जीव ऊपर ममत्व भाव न करवो।

अजीव ने छांडवा जोग किणन्याय कहिजे ? किणी अजीव पर ममत्व भाव न करवो।

पुन्य, पाप छांडवा जोग किणन्याय कहिजे ? शुभ, अशुभ कर्म छांडवा जोग छै।

आश्रव ने छांडवा जोग किणन्याय कहिजे ? आश्रव कर्म ग्रहे छै। कर्मांरो उपाय छै। शुभाशुभ कर्म आवाना बारणां छै। ते छांडवा जोग छै।

कर्म रोकै ते संवर आदरवा जोग छै।

देश थकी कर्म तोड़ो, देश थकी जीव उज्ज्वल थाय ते निर्जरा आदरवा जोग छै।

बन्ध ने छांडवा जोग किणन्याय कहिजे ? शुभाशुभ कर्म जीव के बन्ध रह्या छै, ते बन्ध तो छांडवा ही जोग छै।

मोक्ष ने आदरवा जोग किणन्याय कहिजे? समस्त कर्म मुकावे ते मोक्ष आदरवा जोग छै।

॥ इति द्वादशम् द्वारम् ॥

॥ अथ तेरमूं तलाव द्वार कहै छै ॥

तलाव रूपी जीव जाणवो। अतलाव रूपी अजीव जाणवो। निकलता पाणी रूप पुन्य, पाप जाणवो। नाला रूप आश्रव जाणवो। नाला बन्ध रूप संवर जाणवो। मोरी करी ने पाणी काढ़े ते निर्जरा जाणवी। मांहिला पाणी रूप वंध जाणवो। खाली तलाव रूप मोक्ष जाणवो।

ये तेरा द्वार तन्त किया श्री भीखनजी संत

॥ इति तेरा द्वार सम्पूर्ण ॥

एकादश गणधर स्तवन

श्री इन्द्र भूतिजीरो लीज नाम तो मन वांछित सीझे काम।
मोटा लब्धि तणा भण्डार, वन्दू ग्यारह गणधर ॥ १ ॥
अग्नि भूति गौतमजीरा भाई, वीर जिन दीठां समता आई।
ऋद्धि त्याग लियो संयम भार। वन्दू० ॥ २ ॥
वायु भूति मोटा मुनिराय, ये तीनों ही सगा भाय।
पांच पांच से निकल्या लार। वन्दू० ॥ ३ ॥
विगत स्वामी चौथा जान, भजन कियां होय अमर विमान।
देवलोक सुखरा झणकार । वन्दू ॥ ४ ॥
स्वामी सुधर्मा वीरजी रे पाट, जन्म मरण सेवकरा काट।
मुझ नै आप तणों आधार। वन्दू० ॥ ५ ॥
मण्डी पुत्र नै मोरिज पूत, मुक्ति जावणरा कीधा सूत।
त्रिविधे त्याग्या पाप अठार। वन्दू० ॥ ६ ॥
अकम्पित नै अचल भ्राता, वीर जिन वचने रह्या रता।
चौदह पूर्वना भण्डार । वन्दू० ॥ ७ ॥
मेहतारज नै श्री प्रभास, मोक्ष नगर में कीधो वास।
जपतां होवे जय जयकार। वन्दू० ॥ ८ ॥

ये ग्यारह ब्राह्मण जात, चव्वालीस सै निकल्या साथ।
ज्यां कर दीनो खेवो पार। वन्दूं० ॥ ९ ॥
इण नामे सहु आशा फलै, दोषी दुश्मन दूरे टलै।
ऋद्धि वृद्धि पामै सुख सार। वन्दूं० ॥ १० ॥
इण नामे सब नाशै पाप, नित्य नित्य जपिये भवियण जाप।
चित्त चोखै हृदय में धार। वन्दूं० ॥ ११ ॥
संवत अठारह तियालीस जाण, पूज्य जयमलजीरी अमृत वाण।
चौमासै स्तवन कियो पीपाड़। वन्दूं० ॥ १२ ॥
आषाढ़ सुदि सातम रै दिन, गणधरजी नै गाया इकमन।
आशकरणजी भणे अणगार। वन्दूं० ॥ १३ ॥

ओ भव रत्न चिन्तामणि सरिखो

ओ भव रतन चिन्तामणि सरिखो, निरर्थक तू क्यूं गमावै रे।
चेत सकै तो चेत जीवड़ला, नहिं तो फेर चौरासी आवै रे।ओ० ॥१॥
काल अनादरो गोता खावै, नर्क निगोदरे मांही रे।
पांच थावर तीन विकलेन्द्री में, जन्म मरण री वेदन पाई रे।ओ०॥२॥
तीर्यंच पंचेन्द्री में तूं रुलियो, सन्नी असन्नी मांही रे।
शुभ जोगे कदा देव थयो तो, गर्ज सरी नहीं काई रे। ओ० ॥ ३ ॥
पुन्य योगे मानव भव पायो, रुलता काल अथागो रे।
साचा सतगुरु मिलिया तोनै, अब भाव निद्रा सू जागो रे।ओ० ॥४॥
बालपणो रम खेल गमायो, तरुण पणै लोभायो रे।
रात दिवस धन ने जोड़ी ने, वृथा काल गमायो रे। ओ० ॥ ५ ॥
हिंसा झूठ अदत्त परिग्रह सूं, स्त्री सूं पिण निवर्त्यो नांहीं रे।
सूंस ले गृद्ध पणै सूं भांज्या, मोह मतवाला रे मांही रे। ओ० ॥ ६ ॥
काम भोगां सूं पिण जीव तृप्त न पाम्यो, इन्द्रियां रे वश पड़ियो रे।
किंचित् काल रह्यो अब सोच तूं, कर्म जंजीरां जड़ियो रे।ओ० ॥७॥
कुटुम्ब कबीलो सुत स्त्रियादिक ने, तूं कर रह्यो म्हांरा म्हांरा रे।
कीधा कर्म थारा तूं भुगतेलो, अै थारै स्यूं न्यारा रै। ओ० ॥८॥
ठग री बेटी बाप ने पूछ्यो, थारा किया तूं पासी रे।
कम बान्ध्या ते उदै आयां सूं, कोइय न आड़ो आसी रे।ओ० ॥९॥

वीर थकी तो कर्म न टलिया, चक्री ब्रह्मदत्त नर्क मझारों रे।
कृष्ण जी दाह देख्यो द्वारिका नो, तपै तीजी पताल मझारो रे।ओ०॥१०॥
राम ने लिछमन सीताजी साथे, बनवासो ते लीधो रे।
पाण्डवां पांचू द्रौपदी साथे, कृष्ण देसोंटो दीधो रे। ओ० ॥ ११ ॥
राजा महाराजां ने कर्मां कुडाया, कुटुम्ब सूं कोइय न तिरिया रे।
कुटुम्ब छोड़ी ने संयम लीधो, त्यांरा कारज सरिया रे। ओ० ॥१२॥
गंदी काया रो गर्व सूं करिवो, मलमूत्रनो भण्डारो रे।
आत्म धन काढ़ै ते शूरा, धन धन्नो अणगारो रे॥ ओ० ॥ १३ ॥
रंगी चंगी काया खिण में पलटै, मरण नेड़ो जब आवै रे।
मांखी ज्यूं हाथ घसतो मूरख, पछे घणो पिछतावै रे । ओ० ॥ १४ ॥
कुलरा सतगुरु स्वरूप ऋषीश्वर, जय गणपतरा बड़ा भाई रे।
कुगुरु काल वाद्य'री श्रद्धा, मुझ पिता थकी छोड़ाई रे। ओ० ॥१५॥
अठारैसै सित्यासी बरसे, रीणी शहर मझारी रे।
सच्चा सत्गुरू पिता ने मिलिया म्हारै कुलरा मोटा उपगारी रे।ओ०॥१६॥
बालपणै तपसी गुल हजारी, मुझ ज्ञान ध्यान सिखायो रे।
प्रथम बत्तीसै लाडनूं में जय गणि, भेटी दिल हुलसायो रे। ओ०॥१७॥
छत्तीसै जयगणि नी जयपुर में, सेवा कीधी चौमास मझारी रे।
सीखी ने किया गणि युवपद मघवा मिणधारी रे। ओ० ॥ १८ ॥
सतिय गुलाब गुलाब फूलसी, ज्यांरी मुद्रा मोहनगारी रे।
याद आयाँ थी हियो हुलसै, ज्यांरी जोग छटा छवि भारी रे।ओ०॥१९॥
वर्तमान कालु गणिं पाया, भिक्षु सरधा नो शिर सिक्को रे।
शासन नन्दन बन सुखकारी, एतो तिरण रो जोग छै नीको रे।ओ०॥२०॥

जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय साधारणतया निम्नलिखित जैन आगम मानती है

३२ सूत्रों के नाम

मूल सूत्र चार—

(१) दशवैकालिक, (२) उत्तराध्ययन, (३) नन्दी, (४) अनुयोगद्वार।

ग्यारह अंग—

(१) आचारांग, (२) सूत्रकृतांग, (३) स्थानांग, (४) समवायांग, (५) भगवती (विवाह पन्नति), (६) ज्ञाता धर्म-कथांग, (७) उपासक दशांग, (८) अन्तगड़ दशांग, (९) अणुत्तरो ववाइय दशांग, (१०) प्रश्न व्याकरण, (११) विपाक।

बारह उपांग—

(१) उववाई, (२) रायपसेणी, (३) जीवाभिगम, (४) पन्नवणा, (५) जम्बूद्वीप पन्नति, (६) चन्द्र पन्नति, (७) सूर्य्य पन्नति, (८) कल्पिका, (९) कल्पावतंसिका, (१०) पुष्पिका, (११) पुष्प चूलिका, (१२) वहि दिशा।

नोट—अन्तिम पांच उपांगों का समुच्चय एक नाम 'निरयावली' कहा जाता है।

छेद ग्रन्थ ४—

(१) निशीथ, (२) बृहत्कल्प, (३) व्यवहार, (४) दशाश्रुतस्कन्ध।

आवश्यक।

इन ३२ सूत्रों के अलावे और भी कुछ सूत्र हैं। उनमें जो बातें इनसे मिलती जुलती हैं उनको भी तेरापंथी संप्रदाय मानती है।

तेरापन्थी आचार्यों के विषय में अवश्य जानने लायक कुछ बातें:—

प्रथम आचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री भिक्षु स्वामी—

आपने ओसवाल सुखलेचा गोत्र में जन्म लिया था। आपके पिता का नाम बल्लूजी तथा माता का नाम दीपां बाई था। आपका जन्म मारवाड़ प्रदेश के कटांलिया ग्राम में विक्रम सम्वत् १७८३ मिती आषाढ़ सुदी १३ के दिन हुआ था।

आपने पत्नी के देहान्त के बाद दीक्षा निज में संवत् १८१७ मिती आषाढ़ सुदी १५ के रोज ली और उसी दिन से आचार्य पद को सुशोभित किया। आपने मोट ४८ साधु व ५६ साध्वियों को दीक्षा दी थी।

आपका स्वर्गवास संवत् १८६० भाद्र शुक्ला १३, सिरियारी में हुआ था। आपके स्वर्गवास के समय २१ साधु व २८ साध्वियां आपकी आज्ञा में थी। आपने अपने ४४ वर्ष के आचार्य काल में निम्नलिखित जगह चातुर्मास किया था।—

केलवे में छः (सं० १८१७,२१,२५,३८,४६,५८)

बरोली में एक (सं० १८१८)

सिरियारी में सात (सं० १८१६,२२,२६,३६,४२,५१,६०)

राजनगर में एक (सं० १८२०)
पाली में सात (सं० १८२३,३३,४०,४४,५२,५५,५६)
कन्टालिया में दो (सं० १८२४,२८),
खेरवे में पांच (सं०१८२६,३२,४१,४६,५४)
वगड़ी में तीन (सं० १८२७ ३०,३६)
रणतभंवरगढ़ में दो (सं०१८३१,४८)
पीपाड़ में दो (सं० १८३४,१८४५)
आमेट में एक (सं० १८३५)
पादू में एक (सं० १८३७)
नाथद्वारा में तीन (सं० १८४३,५०,५६)
पुर में दो (सं० १८४७,५७)
सोजत में एक (सं० १८५३)

द्वितीय आचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री भारीमालजी स्वामी—

आपने ओसवाल लोढ़ा गोत्र में जन्म लिया था । आपके पिता का नाम कृष्णाजी व माता का नाम धारिणी था । आपका जन्म मेवाड के मोही ग्राम में संवत १८०३ में हुआ था । आपकी दीक्षा बालब्रह्मचर्यावस्था में स्वामी भिखनजी द्वारा ही संवत १८१७ मिती आषाढ़ सुदी १५ के दिन हुयी थी । भीखणजी स्वामी ने अपने जीवन-काल में ही आपको युवराज पद्वी से विभूषित कर दिया था । आपने संवत् १८६० भादवा सुदी १३ के रोज आचार्य पद को सुशोभित किया था । आपने ३८ साधु एवं ४४ साध्वियाँ दीक्षित

की थीं। आपका स्वर्गवास संवत् १८७८ माघ वदी ८ को मेवाड़ के राजनगर नामक ग्राम में हुआ था। आपके स्वर्गवास के समय ३५ साधु एवं ४१ साध्वियां आपकी आज्ञा में थी। आपने अपने १८ वर्ष के आचार्य काल में निम्नलिखित जगह चातुर्मास किया थाः—

पासांगण में एक (सं० १८६१)
पाली में तीन (सं० १८६२,६८,७२)
खेरवे में एक (सं० १८६३)
केलवे में दो (सं० १८६४,७८)
नाथद्वारे में तीन (सं० १८६५,७४,७५)
आमेट में एक (सं० १८६६)
वालोतरा में एक (सं० १८६७)
जैपुर में एक (सं० १८६९)
माधोपुर में एक (सं० १८७०)
वोरावड़ में एक (सं० १८७१)
सिरियारी में एक (सं० १८७३)
कांकरोली में एक (सं० १८७५)
पुर में एक (सं० १८७६)

तृतीय आचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री रायचन्दजी स्वामी—

आपने ओसवाल बम्ब गोत्र में जन्म लिया था। आपके पिता का नाम चतुरजी बम्ब एवं माता का नाम कुसलांजी था। आपका जन्म मेवाड़ की वड़ी रावलियां ग्राम में संवत् १८४७ में हुआ था।

आपने बाल्यावस्था में भिक्षु स्वामी के शासन काल में मिती चैत्र सुद १५ सं० १८५७ को दीक्षा ली एवं मिती भादवा वदी ६ सं० १८७८ को आप आचार्य पद पर समासीन हुये। आपने ७७ साधु एवं १६८ साध्वियों को दीक्षा दी थी। आपका स्वर्गवास संवत् १६०८ मिती माघ वदी १४ को रावलिया में हुआ था। आपके स्वर्गवास के समय ६७ साधु तथा १४४ साध्वियां आपकी आज्ञा में थी। आपने अपने ३० वर्ष के आचार्य काल में निम्न-लिखित जगह चातुर्मास किया था:—

पाली में आठ (सं० १८७६,८२,८६,६०,६३,६६,१६०२,१६०५)
जैपुरमें छः (सं० १८८०,६२,६७,१६००,१६०३,१६०७)
पीपाड़ में एक (सं० १८८१)
उदैपुर में चार (सं० १८८३,८६,६५,१६०८)
पटलावद में एक (सं० १८८४)
नाथद्वारा में पांच (सं० १८८५,८८,६४,१६०१,१६०४)
बीदासर में दो (सं० १८८७,६६)
गोगून्दा में एक (सं० १८६१)
लाडनू में दो (सं० १८६८,१६०६)

चतुर्थ आचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री जीतमलजी स्वामी—

आपने ओसवाल गोलेछा गोत्र में जन्म लिया था। आपके पिता का नाम आईदानजी एवं माता का नाम कलूजी था। आपका

जन्म मारवाड़ प्रदेश के रोहित ग्राम में सम्वत् १८६० मिती आसोज सुदी १४ के दिन हुआ था।

बाल्यावस्था में ही अपनी माता एवं अपने अन्य दो भाइयों के सहित ही सं० १८६९ मिती माघ वदी ७ को जैपुर में आपने दीक्षा ली थी। आप सं० १९०८ मिती माघ सुदी १५ के दिन पाट पर आसीन हुये थे। आप के हाथों से १०५ साधु एवं २२४ साध्वियों की दीक्षा हुयी थी। आपका स्वर्गवास सं० १९३८ भादवा वदी १२ को जैपुर में हुआ था। आपके स्वर्गवास के समय ७१ साधु एवं २०५ साध्वियां आपकी आज्ञा में थीं। आपने अपने ३० वर्ष के आचार्य काल में निम्न लिखित जगह चातुर्मास किया था:—

जयपुर में चार (सं० १९०९,२८,३७. ३८)
उदैपुर में एक (सं० १९१०)
रतलाम में एक (सं० १९११)
नाथद्वारे में एक (सं०१९१२)
पाली में दो (सं० १९१३,२२)
बीदासर में आठ (सं० १९१४,१७,२३,२६,२९,३०,३५,३६)
लाडनूं में छः (सं० १९१५,१८,२७,३२,३३,३४)
सुजानगढ़ में चार (सं० १९१६,१९,२४,३१)
चूरू में एक (सं० १९२०)
जोधपुर में दो (सं० १९२१,२५),)

पंचम आचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री मघराजजी स्वामी—

आपने ओसवाल वेगवानी गोत्र में जन्म लिया था। आपके पिता का नाम पूरणमलजी एवं माता का नाम वन्नांजी था। आपका जन्म थली प्रदेश में बीदासर ग्राम में सं० १८९७ मिती चैत्र सुदी ११ के दिन हुआ था।

आपकी दीक्षा बाल्यकाल में सं० १९०८ मिगसर वदी १२ को लाडनूं में हुयी थी। आप आचार्य पद पर सं १९३८ मिती भादवा सुदी २ को विराजमान हुये थे। आपने ३६ साधु एवं ८३ साध्वियों को दीक्षा दी थी।

आपका स्वर्गवास सम्वत् १९४९ चैत्र वदी ५ को सरदारशहर में हुआ था। आपके स्वर्गवास के समय ७१ साधु एवं १९३ साध्वियां आपकी आज्ञा में थी।

आपने अपने ११ वर्ष के आचार्य काल में निम्नलिखित जगहों में चातुर्मास किया था :—

बीदासर में तीन (सं० १९३९,४४,४७)

चूरू में एक (सं० १९४०)

सरदारशहर में दो (सं० १९४१,४५)

जोधपुर में एक (स० १९४२)

उदैपुर में एक (सं० १९४३)

लाडनूं में एक (सं० १९४६)

जैपुर में एक (सं० १६४८)
रतनगढ़ में एक (सं० १६४६)

षष्ट आचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री मानिकलालजी स्वामी—

आपका जन्म ओसवाल थरड श्रीमाल गोत्र में हुआ था। आपके पिता का नाम हुकमचन्दजी एवं माता का नाम छोटांजी था। आपका जन्म ढूंढाड़ प्रदेश जैपुर में सम्वत् १६१२ मिती भादवा वदी ४ के दिन हुआ था।

आपकी दीक्षा वाल्यावस्था में लाडनूं में मिती फागण सुदी ११ सं० १६२८ के दिन हुयी थी एवं सरदारशहर में सं० १६४६ मिती चैत्र सुदी ८ को आप आचार्य पद पर आरूढ़ हुये थे। आपने १६ साधु एवं २४ साध्वियों को दीक्षा दी थी। आपका स्वर्गवास सम्वत् १६५४ कार्तिक वदी ३ को सुजानगढ़ में हुआ था। आपके स्वर्गवास के समय ७२ साधु एवं १६४ साध्वियां आपकी आज्ञा में थी।

आपने अपने पांच वर्ष के आचार्य काल में निम्नलिखित जगहों में चातुर्मास किया था:—

सरदारशहर में एक (सं० १६५०)
चूरू में एक (सं० १६५१)
जैपुर में एक (सं० १६५२)
बीदासर में एक (सं० १६५३)
सुजानगढ़ में एक (सं० १६५४)

सप्तम आचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री डालचन्दजी स्वामी—

आपने ओसवाल पीपाड़ा गोत्र में जन्म लिया था। आपके पिता का नाम कानीरामजी एवं माता का नाम जड़ावाजी था। आपका जन्म मालवा प्रान्तीय उज्जैन नामक ग्राम में सं० १९०९ आषाढ़ सुदी ४ को हुआ था।

आपकी दीक्षा बाल्यावस्था में सं० १९२३ भादवा वदी १२ के दिन इन्दौर में हुयी थी तथा लाडनूं में सं० १९५४ माघ वदी २ के दिन आचार्य पद पर आसीन हुये थे। आपने ३६ साधु एवं १२५ साध्वियों को दीक्षा दी थी। आपका स्वगवास लाडनूं में सं० १९६६ भाद्र मास में हुआ था। आपके स्वर्गवास के समय ६८ साधु एवं २३१ साध्वियां आपकी आज्ञा में थी। आपने अपने १२ वर्ष के आचार्य काल में निम्नलिखित जगहों पर चातुर्मास किया था:—

लाडनूं में चार (सं० १९५५, ६२, ६५, ६६)

सरदारशहर में दो (सं० १९५६, ६३)

बीदासर में दो (सं० १९५७, ६४)

राजलदेसर में एक (सं० १९५८)

जोधपुर में एक (सं० १९५९)

सुजानगढ़ में एक (सं० १९६०)

चूरू में एक (सं० १९६१)

अष्टम आचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री कालुरामजी स्वामी—

आपने ओसवाल कोठारी गोत्र में जन्म लिया था। आपके पिता श्री का नाम मूलचन्दजी एवं माता का नाम छोगाजी है। आपका जन्म थली प्रान्तीय छापर नामक ग्राम में सं० १९३३ फाल्गुन सुदी २ को हुआ था। आपकी दीक्षा मघराजजी स्वामी द्वारा वाल्यावस्था में ही अपनी माता * सती छोगाजी के साथ सं० १९४४ आसोज सुदी ३ को वीदासर में हुयी थी।

पूज्यजी महाराज स्वामी डालचन्दजी के स्वर्गवास के बाद आपने सं० १९६६ मिती भादवा सुदी १५ के दिन आचार्य पद को सुशोभित किया था। आपने १५५ साधु एवं २५५ साध्वियों को दीक्षा दी थी। उक्त आठों आचार्यों में सब से ज्यादा दीक्षा संस्कार आपके ही हाथों से हुआ है। आपका स्वर्गवास सं० १९९३ मिती प्रथम भाद्र शुक्ला ६ को गंगापुर नामक ग्राम में हुआ था। आपके स्वर्गवास के समय १३९ साधु एवं ३३४ साध्वियां आपकी आज्ञा में थी। आपने अपने २७ वर्ष के आचार्य काल में निम्नलिखित जगहों में चातुर्मास किया था:—

लाडनूं में तीन (सं० १९६६, १९७०, ८६)

सरदारशहर में तीन (सं० १९६७, ७४, ८९)

---

* सती छोगाजी ९३ वर्ष की उम्र की आजकल है और वृद्धावस्था की वजह से वीदासर में ठाणापती के रूपमें विराजमान हैं।

बीदासर में चार (सं० १६६८, ७६, ८२,८८)
चुरू में दो (सं० १६६६, ८१)
सुजानगढ़ में दो (सं० १६७१, ६०)
उदैपुर में दो (सं० १६७२, ६२)
जोधपुर में दो (सं० १६७३, ६१)
राजलदेसर में एक (सं० १६७५)
भिवानी में एक (सं० १६७७)
रतनगढ़ में एक (सं० १६७८)
बीकानेर में एक (सं० १६७६)
जैपुर में एक (सं० १६८०)
गंगाशहर में दो (सं० १६८३, ८७)
डूंगरगढ़ में एक (सं० १६८४)
छापर में एक (सं० १६८५)
गंगापुर में एक (सं० १६६३)

वर्तमान आचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री तुलसीरामजी स्वामी—

आपने ओसवाल खटेड़ गोत्र में जन्म लिया है। आपके पिता का नाम झूमरमलजी एवं माता का नाम बदनाजी है।

आपका जन्म मारवाड़ प्रान्त में लाडनूं नामक ग्राम में सं० १६७१ मिती कार्तिक शुक्ला २ के दिन हुआ है। आपने अपनी बाल्यावस्था में ही सं० १६८२ मिती पौष वदी ५ को प्रवर्ज्या ली है। आपको युवराज पदवी अष्टम आचार्य श्री श्री श्री १००८ श्री

श्री कालुरामजी स्वामी द्वारा प्राप्त हुयी थी। आप अष्टमाचार्य के स्वर्गवास के वाद (सं० १९९३ भादवा सुदी ६) भादवा सुदी ९ को आचार्य पदपर समासीन हुए हैं। तत्पश्चात् अब तक (सं० १९९५ माघ सुदी १५ तक) आप २५ संत एवं ५९ सतियों को दीक्षा दे चुके हैं। वर्तमान में आपकी आज्ञा में १५१ संत व ३७२ सतियां मौजूद हैं। उपरोक्त नौ आचार्यों में आपने ही सबसे छोटी उम्र में आचार्य का गुरु भार ग्रहण किया है। आपमें इस उम्र में जो पांडित्य, विद्वत्ता, वैराग्य व संघ-परिचालन शक्ति है, वह असाधारण है। आपने पाट पर विराजने के वाद से अबतक निम्न लिखित जगह चतुर्मास किया है:—

गंगापुर में एक (सं० १९९३)
बीकानेर में एक (सं० १९९४)
सरदारशहर में एक (सं० १९९५)

—:*:—

देवगुरु धर्मनीं संक्षेप ओलखणा

देव अरिहन्त, गुरु निग्रन्थ, धर्म केवली प्रलप्यो। ये तीन अमूल्य रत्न छै। याने यथार्थ जाण कर प्रतीत राखे ते सम्यक्त्व जाणवी।

१ देव अरिहन्त किसा? तेहनी ओलखना कहै छैः—अट्ठारे दोष रहित, बारह गुणां सहित, चौतीस अतिशय, पैंतीस बचनातिशय, एक हजार आठ शुभ लक्षण का धारणहार, केवल ज्ञानी, केवल दर्शनी। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, अन्तराय, ये च्यार घातिक कर्म करके रहित। तेरमा गुणस्थान सहित, ते वीतराग प्रभु, रागद्वेष-मयी अरि कहितां वैरीने हण्या, तिण ने अरिहन्त कहिजे, ज्ञानवन्त थया तिण सूं भगवन्त कहिजे। साधू, सांध्वी, श्रावक, श्राविका रूप च्यार तीर्थ प्रवर्ताया तिण सूं तीर्थङ्कर कहिजे। तेहनीं च्यार निक्षेप थकी ओलखणा जाणवी। श्रीं अनुयोग द्वार सूत्र में कह्यो छै, जीव यां अजीव तीर्थङ्कर के नामें हो तो तीर्थङ्कर का नाम निक्षेपा, स्थापना करै ते स्थापना निक्षेपा, तीर्थङ्कर होनेवाला जीव तीर्थङ्करों का गुण रहित हो वो द्रव्य निक्षेपा, और तीर्थङ्करों का गुण सहित हो वो भाव निक्षेपा है। ये च्यार निक्षेपा कह्यो। इण में गुण सहित तरण तारण भाव निक्षेपो छै, ते वंदवा जोग छै। बाकी तीन निक्षेपा गुण रहित छै, ते वंदवा जोग नहीं। गुण सहित नें नमस्कार कियां धर्म पुन्य थाय छै। गुण सहित अरिहन्त देवाधिदेव ने धर्म देव जाणवो।

दोहा—जिणमार्ग में देखल्यो गुण लारै पूजा ।
निगुणां ने पूजै तिके मारग छै दूजा ॥

२ गुरु निग्रन्थ । ते ग्रन्थ कहतां धन रहित, ते निग्रन्थ छै । शुद्ध साधू पंच महाव्रत धारी, उग्रविहारी, शुद्ध आचारी, ब्रह्मचारी, सतरह भेदे संयम पालै, बयांलीस दोष टालकर आहार पाणी लेवे, पांच इन्द्रियां नें जीतै, बावीस परीषह सहन करै, पंच सुमति, तीन गुप्ति पंच महाव्रत धारी, ये तेरा पंथ में प्रवर्ते—ते गुरू जाणवा ।

३ धर्म केवल ज्ञानी प्ररूप्यो । ते जिन आज्ञा में धर्म, आज्ञा बाहर अधर्म, असंयती जीव को जीवणो वांछै ते राग, मरणो वांछै ते द्वेष, संसारमयी समुद्र से तरणो वांछै ते वीतराग प्ररूपित धर्म जाणवो । दुर्गति पड़तां जीवनें धारी राखै ते धर्म जाणवो । ते विनय मूल धर्म दोय प्रकारै छैः—श्रमण और श्रमणोपासक । श्रमण धर्म तो पंचमहाव्रत रूप और श्रमणोपासक धर्म द्वादश व्रत रूप छै । ते धर्म दोय प्रकार से नीपजे छै । ते कहै छै । निर्जरा का बारह भेद सूं, तथा संवर का बीस बोल सूं । यां बिना सर्व अधर्म छै, ते अशुभ आस्रव छै तेहथी अशुभ कर्म बंधै छै । आज्ञा मांहिली करणी करतां अशुभ कर्म की निर्जरा हुवै तथा शुभ कर्म से पुन्य बंधै छै । ये रीते ओलखना । कुपात्र दान में पाप, सुपात्र दान में पुन्य ते शुभ जोग प्रवर्त्यां थाय छै । हिन्सा, झूठ चोरी, मैथुन परिग्रह ऐ पञ्च आश्रव द्वार सेवै ते कुपात्र, नहीं सेवै ते सुपात्र छै ।

कुछ मनन करने योग्य बातें

१—(१) जीवहिंसा (२) झूठ (३) चोरी (४) मैथुन (५) परिग्रह—इन पांचों को जहां तक टाल सको—टालने का प्रयास करो। इनको सेने, सेवाने और अनुमोदने में एकान्त पाप है। परन्तु गृहस्थ के लिये सर्वथा त्याग न हो तो भरसक जितना त्याग करें, उतना ही अच्छा है।

२—सबसे पहले हर एक काम में परमात्मा को याद करो जिससे हृदय शुद्ध हो जाय। सुबह उठते समय और रात में सोते समय नवकार मन्त्र को अवश्य स्मरण करो। नवकार मन्त्र सब मन्त्रों में श्रेष्ठ और समस्त आपद विपद टालनेवाला है। यह पंच परमेष्ठि मंत्र है। हरदम याद रखने योग्य है।

३—गुरु का अविनय करने से गुण नहीं आते। अविनयी का पढ़ना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार वेश्या का शृङ्गार।

४—बुरा काम यदि कोई छिप कर भी करे तो आखिर वह प्रकट में आवेहीगा। अतः बुरा काम नहीं करना चाहिये। जवानी दीवानी है, उसका कोई भरोसा नहीं—जो धर्म करना हो उसे करने में आलस्य नहीं करना चाहिये।

५—गुण माने उसको गुण सिखलाना, दान सुपात्र को देना, उपदेश सबको देना, बुरे और भले दोनों के साथ नेकी करना, यह गुणवानों का काम है।

६ – लायकों, चतुरों, गुणीजनों, विद्वानों, हुनरमंदों, जितेन्द्रियों, परोपकारियों, धर्मात्माओं, तपस्वियों और शीलवन्तों में जिसका नाम नहीं, उसका जन्म मृग के समान व्यर्थ है।

७ – लुच्चे, बदमाश, बेईमान, चोर, जुआरी, औरतों के छलबल, झूठे, कपटी, दगाबाज, व्यभिचारी, अविनीत और पापण्डी को अवश्य पहचान लेना चाहिये। उससे बचे रहने में ही खूबी है।

८—माता, पिता, गुरु, दोस्त और जो अपने पर विश्वास करे—इनसे दगा करनेवाला बहुत दुःख पाता है। उसको कभी सुख प्राप्त नहीं होगा। वह पाप कर्म करके इस भव परभव में दुःखी होगा। विश्वासघातक की कभी उन्नति नहीं होती।

९—जहां गप्पी और निन्दक बैठे हों वहां बुद्धिमान को चुप रहना चाहिये।

१०—समय बहुत ही कीमती है। गया हुआ समय फिर हाथ नहीं आता। अतः एक क्षण भी व्यर्थ न जाने दो। जहां तक बन सके ईश्वरभजन और धर्म करो—जिससे यह लोक और परलोक सुधरे।

११—जहां तक बन सके—कर्जदार मत बनो। कर्जदारी दो प्रकार की है—एक तो द्रव्य और दूसरी भाव। द्रव्य तो दूसरे से उधार लेना और भाव पापकर्म उपार्जन करना है। कर्जदार चाहे जैसा हिम्मतवर क्यों न हो, दुःखी ही रहेगा।

१२—जुल्म से पैसा कमानेवाले बदनाम और गुनहगार होते हैं और उस पैसे से बरकत भी नहीं होती। जुल्मी कभी सुखी नहीं रहता।

१३—साधु-मुनिराज को देख कर खुश होना, बन्दना करना, विनय सहित भक्ति करना, शुद्ध निर्दोष आहार पानी देना, व्याख्यान सुनना, सुन कर सत्य सरधना, पुण्यवानों का काम है। साधु-संगति से पाप-कर्म क्षय होकर पुण्य बढ़ता है।

१४—संगति करो तो ऐसे साधु महात्मा की करो जो किसी भी जीव को न मारे, झूठ न बोले, चोरी न करे, स्त्री से विषय-भोग न करे, परिग्रह न रखे। ऐसे ही साधु कल्याण-मार्ग बताने में समर्थ हैं।

१५—जो आदमी विलासिता में डूबे रहते हैं, उनके पास से निम्न बातें चली जाती हैं—दौलत, इज्जत, ताकत, रंग, रूप, धर्म, पुण्य, जप और तप।

१६—क्रोध के समान जहर, मान के समान वैर, माया के समान भय, लोभ के समान दुःख, दया के समान अमृत, सत्य के समान शरण, संतोष के समान सुख, धर्म के समान मित्र—इस संसार में कोई नहीं है। औरत सराहे सो जती और साधु बतावे सो सती।

१७—पाप टाले सो पण्डित, दया करे सो दानी, कुलच्छण छोड़े सो चतुर, धर्म करे सो ज्ञानी, स्थिर चित्त रखे सो ध्यानी, इन्द्रियों को वश में रखे सो शूरा, परोपकार करे सो पूरा, गुणवन्तों का गुण गावे सो गुणवान और निर्धन से नेह करे सो पुण्यवान।

—**—

अथ तिक्खुत्ता की पाटी

अर्थ सहित

[नोटः— साधु मुनिराजों को वंदना नमस्कार करते वक्त निम्नलिखित पाटी से उनकी वंदना करना उचित है। इसलिये इसे कंठस्थ कर लेना ठीक रहेगा।]

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं वंदामि नमं
तीन वार दाहिणापा साथी प्रदक्षिणा देई वंदना करू' नमस्कार करू'

सामी सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं
सत्कार करू' सम्मान करू' कल्याणकारी मङ्गलकारी

देवयं चेइयं पज्जुवासामी मत्थएण वंदामि
धर्मदेव चित्तप्रसन्नकारी ज्ञानवंत सेवना करू' मस्तकेकरी वंदन नमस्कार करूँ।

—∞∞—

अथ पंचपद वंदना

[नोटः—जैन धर्म में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य्य, उपाध्याय और साधु ये पांच वदनीक पद वतलाया है। अरिहंत, सिद्ध=असरीरी, आचार्य्य उपाध्याय और मुनि (साधु) इनका आद्याक्षर, अ+ अ+ आ+ उ+ म् इनकी संधि करने से ओम् होता है। ओम् केवल जैनियों के नहीं प्रत्युत भारत के प्रायः सभी धर्मवालों के आदर का शब्द है। अतः इन पांच पदों की वंदना प्रत्यह करने से आत्मिक विशुद्धि व उन्नति होती है। समस्त पाठकों को इस वंदना को याद कर लेना चाहिए और कम से कम सुबह उठकर और रात में सोते वक्त शुद्ध मन से जयना सहित इन पंच परमेष्टि की वंदना कर कृतकृत्य होना चाहिए।]

पहिले पद श्री सीमंधर स्वामी आदि देई जघन्य २० (बीस) तीर्थङ्कर देवाधिदेवजी उत्कृष्टा १६० (एकसह साठ) तीर्थङ्कर देवाधिदेवजी पञ्चमहाविदेह खेत्रां के विषै बिचरै छै, अनन्त ज्ञान का धणी, अनन्त दर्शन का धणी, अनन्त बल का धणी, एक हजार आठ लक्षणा का धारणहार, चौसठ इन्द्रां का पूजनीक, चौतीस अतिशय, पैंतीस वाणी, द्वादश गुण सहित विराजमान छै, ज्यां अरिहन्ता से मांहरी वन्दना तिक्खुता का पाठ से मालूम होज्यो।

दूजे पद अनन्ता सिद्ध, पन्दरा भेदे अनन्ती चौवीसी मोक्ष पहुंता तिहां जनम नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, सोग नहीं, मरण नहीं,

भय नहीं, संयोग नहीं. वियोग नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र नहीं, फिर पाछा गर्भावास में आवै नहीं, इसा उत्तम सिद्ध भगवन्ता से मांहरी वन्दना तिक्खुता का पाठ से मालूम होज्यो।

तीजै पद जघन्य दोय कोड़ केवली उत्कृष्टा नव कोड़ केवली पञ्च महाविदेह खेत्रां में विचरै छै, केवल ज्ञान केवल दर्शण का धारक, लोकालोक प्रकाशक, सर्व द्रव्य खेत्रकाल भाव जाणै देखै छै, ज्यां केवली जी से मांहरी वन्दना तिक्खुता का पाठ से मालूम होज्यो।

चौथे पद गणधरजी आचार्यजी उपाध्यायजी थविरजी, ते गणधरजी महाराज केहवा छै, अनेक गुणा विराजमान छै, आचार्यजी महाराज केहवा छै, छत्तिस गुणा विराजमान छै, उपाध्यायजी महाराज केहवा छै, पचीस गुणा विराजमान छै, थविरजी महाराज केहवा छै धर्म से डिगता हुआ प्राणी ने थिर करी राखै, शुद्ध आचार पालै पलावे, ज्यां उत्तम पुरुषां से मांहरी वन्दना तिक्खुत्ता का पाठ से मालूम होज्यो।

पंचमें पद मांहरा धर्म आचारज गुरु पूज्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री तुलसीरामजी स्वामी (वर्त्तमान आचारज को नाम लेणो) आदि जघन्य दोय हजार कोड़ साधू साध्वी. उत्कृष्टा नव हजार कोड़ साधू साध्वी, अढ़ाई द्वीप पन्दरै खेत्रां में विचरै छै ते महा उत्तम पुरुष केहवा छै, पंच महाव्रत का पालणहार, छव काया ना पीहर, पंच सुमति सुमता, तीन गुप्ति गुप्ता, नव विधि वाड सहित ब्रह्मचर्य्यना पालनहार, बारै भेदै तपस्या का करणहार, बावीस परीसह का जीतणहार, बयालीस दोष टाल आहार पाणी का

लेवणहार, बावन अणाचार का टालणहार, सताबीस गुण संयुक्त, निर्लोभी, निर्लालची, सचित्त का त्यागी, अचित्त का भोगी, संसार से पूठा, मोक्ष से स्हामां, अस्वादी, त्यागी, वैरागी, तेडिया आवै नहीं, नोंतियां जीमें नहीं, बायरानीं परै अप्रतिबन्ध विहारी इसा महापुरुषां से मांहरी वन्दना तिक्खुता का पाठ से मालूम होज्यो।

नित्यप्रति चितारने के १४ नियम

१ सचित–माटी, पाणी, अग्नि, वनस्पति, फल, फूल, छाल्य, काष्ट, मूल. पत्र, वीज त्वचा तथा अग्नि प्रमुख अनेक शस्त्र लाग्युं न होय ते, इलायची, लोंग, बादाम इत्यादिक सचित्तनुं वजन धारवुं ।

२ द्रव्य—धातु वस्तुनी शली तथा अपनी आंगुली के सिवाय जो वस्तु मुख में दीजै सो सर्व द्रव्य की गिणती में आवै। नामान्तर, स्वादान्तर, स्वरूपान्तर, परिणमान्तर, द्रव्यान्तर होणे से द्रव्यांतर होई। जिम गेहूं एक द्रव्य किन्तु उसकी रोटी, फीणा रोटी, वेढवा रोटी और बाटी यह सर्व द्रव्य जुदा कहिये। इसी प्रकारे भात. दाल, रोटी, मांड़ियो, पलेव, तरकारी, पापड़, खीचिया, लड्डू, फीणी, घेवर, खाजा इत्यादि। यहाँ उत्कृष्ट द्रव्य को नाम लेई राखै तो एक ही द्रव्य कहिये। जैसे मेवे की खीचड़ी अनेक द्रव्य निष्पन्न है किन्तु नाम लेके रखने से एक ही द्रव्य है।

३ विगई—दूध, दही, घी, गोल, (चीनी गुड़) तेल तथा जो चीज कढाइमां तलायवे तेहनी गणत्री धारवी।

४ वाणह–पगरखाँ अथवा जोड़ा तथा मोजा चट्टी, खड़ाउ (जो पावमें पहना जाय)

५ तंबोल—पान, सुपारी, इलायची, लवंग चूरण, गोली, खाटो इत्यादिक नुं वजन धारवुं।

६ वत्थ—वस्त्र (रेशमी, सूती, शण तथा ऊनना पगड़ी, टोपी, कोट, जाकिट, गंजी, चोला, कमीज, धोती, पाजामा, दुपट्टा, चद्दर, शाल, अङ्गोछा और रूमाल। मर्दाना, जनाना कपड़ा) वगैरहनी गणत्री धारवीं।

७ कुसुमेसु—जे वस्तु नाके सूंघवामा आवै तेहना तोलनुं प्रमाण करवुं उदाहरण फूल, फूलकी चीजें जैसे-माला, हार, गजरा, तुर्रा, सेहरा, पंखा, शय्या, अतर, तेल, सेण्ट, घी, छींकणी वगैरहनों नियम करवो।

८ वाहण—चरतुं, फरतुं, तरतुं, उदाहरण—हाथी, घोड़ा, ऊंट, इक्का, गाड़ी, रथ, पालकी, रिक्सो, रेल, ट्राम, साईकल, मोटर, मोटर साईकल, उड़नी जहाज, नाव, अने बोट वगैरह नो नियम करवो।

९ सयण—सूवानी सज्या, पाट, पाटला, बिछाना, कुरसी, चौकी, पलंग, छपर-खाट, मेज, तखत, सुखासन, सतरंजी, जाजम, गद्दी वगैरह नी गणत्री धारवी।

१० विलेवण—जे वस्तु शरीरे चौपड़वा मा आवै तेहता वजननुं प्रमाण उदाहरण—सूखड़ चन्दन, केशर, तेल, सोडो, मसालो, कपूर, कस्तूरी, रोली, काजल, सुरमा वगैरह।

११ वंभ—ब्रह्मचर्यनो नियम करवोः—स्त्री पुरुपने सूई डोरै के

न्याय तथा बाह्य विनोद की गणत्री धारवी, श्रावक पर-दारा त्याग और स्वदारा से ही सन्तोष राखै, उसका भी प्रमाण करै, अन्तराय देणी नहीं, संयोग मेलणो नहीं।

१२ दिशि-पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नीचूं अने ऊंचुं ए छः दिशाए जावा आवाना कोसनुं प्रमाण धारवुं चिट्ठी, तार, आदमी, माल, इतने कोस, भेजना तथा मंगाना।

१३ न्हाण–सर्व अंगे नहावुं तेहनी गणत्री तथा पाणीनो वजन धारवुं।

१४ भत्तेसु-भोजण तथा पाणी वापरवु तेहना वजनमुं प्रमाण करवुँ इतना घर उपरान्त जीमणो तथा पाणी पीणो नहीं।

उपरोक्त चौदह नियम हर रोज धार लेने से अनेक प्रकार का पाप टलता और मनवचनकाया का संयम होता है। इन सब में अपनी अपनी इच्छा मुजब मर्य्यादा कर सकते हैं। मूल बात १४ नियम प्रत्येक मनुष्य के—चाहे जैन हो या अजैन—पालन करने योग्य है।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥

सुभाषित

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभण्डाणि नीणेइ, असारं अवउज्झइ ॥

एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहि अणुमन्निओ ॥

निद्दं च न बहु मन्निज्जा, संप्पहासं विवज्जए ।
मिहो कहाहिं न रमे, सज्झायम्मि रओ सया ॥

अणुसासिओ न कुप्पिज्जा, खंतिं सेविज्ज पण्डिए ।
खुड्डेहिं सह संसग्गिं, हासं कीडं च वज्जए ॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिए ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पणामेवमप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ॥

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइं पस्सओ।
पिहिआसवस्स दंतस्स, पावकम्मं न वंधइ॥
जयं चरं जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजन्तो भासन्तो, पावकम्मं न वंधइ॥
न तस्स दुक्खं विभयन्ति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न वंधवा।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं॥
लाभालाभे सुहे दुक्खे, जाविए मरणे तहा।
समो निन्दापसंसासु, तहा माणावमाणओ॥
कम्मुणा वम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥
न वि मुण्डिएण समणो,, न ओंकारेण वम्भणो।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो॥
समयाए समणो होइ, वम्भचेरेण वम्भणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो॥
जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ।
जाविंदिआ न हायंति, ताव धम्मं समायरे॥
चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं॥

शुद्धिपत्र

पत्र संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
ग	६	सवथा	सर्वथा
छ	१९	दपनीय	दूपनीय
च	१५	शिर	सिर
झ	२०	रक्षनावेक्षन	रक्षणावेक्षण
थ	७	उपाजन	उपार्जन
भ	१४	उन्नति को	उन्नति की
भ	१७	गुणा	गुण
३५	४	कितने	कितनी
"	"	होते हैं	होती है
३६	१८	चरित्र	चारित्र
४२	२	ज्यो	जो
५२	१	कमता	कम होता
५३	४	होते	होती
५५	४	आहारक	आहारिक
५७	२१	दरज	दर्ज
६१	१९	अविसम वाद	अविषमवाद
६२	३	कम	कर्म
"	२१	ईह लोक	इह लोक
६४	२	चवदहवें	चौदहवें
६९	११	हृन्दम	हरदम
७०	११	पिस्तावेगा	पछतावेगा
७२	१०	अनुनाग	अनुभाग

पत्र संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७२	१७	चरित्र	चारित्र
७६	१२	काय्य	कार्य
७७	१३	इकीसव	इक्कीसवें
७८	१	मोटकी	मोट को
,,	४	को	का
,,	११	की	का
८०	६	मोटकी	मोटको
८०	४	भिक्षगणिराज	भिक्षुगणिराज
८१	१	चाभी	चावी
८५	६	लाक्ष्मावाणिज्य	लाक्षावाणिज्य
९५	५	अशभ	अशुभ
,,	२०	तोड़वारा	रोकवारा
१००	१७	वण	वर्ण
१०८	१२	कम	कर्म
१०८	११	पदारर्थ	पदार्थ
११६	१६	वंहत	वहता
११७	१५	कीधो	कीधी
१२७	११	ने कोण	ते कोण
१२९	१४	वतमान्	वर्तमान्
१३४	८	कमरो	कर्म रो
१३७	१	प्रदेश सं	प्रदेश सूं
,,	११	वरत	वरते
१४२	१८	तोड़ो	तोड़ी
१४४	२	लीज	लीजे